आशा पर पानी

मौलिक, सामाजिक उपन्यास

लेखक—

श्री० जगदीश झा 'विमल'

प्रकाशक—

'चाँद' कार्यालय,

इलाहाबाद

मई, १९२९

दूसरा संस्करण, २०००]   [मूल्य दस आने

SECOND EDITION

Two Thousand Copies

Printed and Published

by

R. SAIGAL

at

The Fine Art Printing Cottage

28, Edmonstone Road

Allahabad

May

1929

उपहार
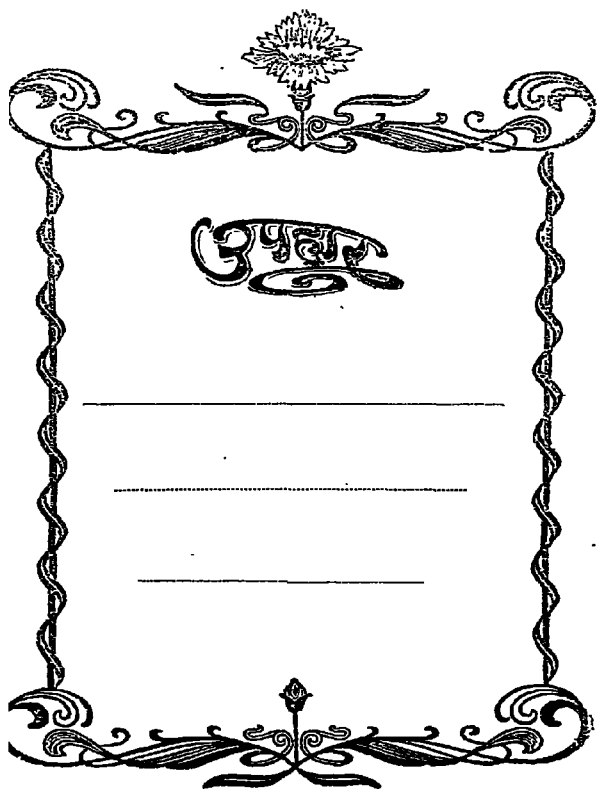
हर्ष तथा सौभाग्य का विषय है कि इन दिनों राष्ट्रभाषा हिन्दी में भी उदीयमान सुलेखकों की कृपा से, सामाजिक दुर्गुणों के अत्याचार तथा देश और समाज की दयनीय दशा के चित्र से चित्रित पुस्तकें शिक्षित-संसार के सामने आने लगी हैं।

इस जाग्रति के युग में चारों ओर से सुधार की पुकार सुनाई पड़ती है, ग़ुलामी की बेड़ी तोड़ने की गुहार मचाई जा रही है, स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए भगीरथ-प्रयत्न किए जा रहे हैं, सभा-समाज में लम्बे-चौड़े व्याख्यान दिए जा रहे हैं। सब कुछ हो रहा है, किन्तु जिससे हमारी कमज़ोरियाँ बढ़ती जा रही हैं, उस ओर किसी का ध्यान ही नहीं जाता, इसी से सफलता र ही बढ़ती दिखाई देती है।

जिस प्रकार छोटी-छोटी फुन्सियों से कभी-कभी प्राणनाशक भयङ्कर विस्फोटक भी निकल आते हैं, उसी प्रकार छोटी-छोटी सामाजिक कुरीतियों से समाज रसातल को पहुँचने लगता है। यह स्वतन्त्रता देवी के उपासना का समय है, कुरीतियों को दूर करने का अवसर है, अतएव ऐसे सुअवसर पर सब कार्य उसी के अनुकूल होना लाभदायक होगा। प्रचलित प्रथा के

अनुसार समाज पर कैसे प्रभाव पड़ रहे हैं, निर्धारित शिक्षा-पद्धति से देश का कितना कल्याण हो रहा है—ये सब विचारणीय हैं। समय के अनुसार जो नियम पहले लाभदायी होते हैं, समय बदल जाने से वही हानिकारक भी हो जाते हैं। ज्यों-ज्यों समय बदलता जाय, त्यों-त्यों उसी के अनुसार नियम भी बदलना आवश्यक है और उसी से कल्याण की आशा है।

हिन्दी के उदीयमान् लेखक श्रीयुत पण्डित जगदीश झा 'विमल' जी ने अपनी लिखी हुई 'आशा पर पानी' नामक पुस्तक की—जो आपके सामने है और जिसमें सामाजिक कुरीतियों तथा वर्त्तमान शिक्षा-शैली से सताए शिक्षित युवक की अवस्था का दिग्दर्शन कराने का स्तुत्य प्रयत्न किया है—भूमिका लिखने का भार मुझको दिया है। मैंने इस पुस्तक को ध्यान-पूर्वक पढ़ा। यद्यपि इस विषय में मैं अपनी अयोग्यता से कुछ लिखने की इच्छा नहीं रखता था, किन्तु पुस्तक की प्राञ्जल भावमयी रचना की सत्यता का समर्थक होकर ही कुछ लिखने को विवश हुआ हूँ। मैं तो कहूँगा कि समाज पर पुस्तक में वर्णित कुप्रथाओं से बड़ा बुरा प्रभाव पड़ रहा है। पाठकों से अनुरोध है कि एक बार वे इस पुस्तक को पढ़ कर उन कुरीतियों के दूर करने की चेष्टा में लग जायँ, तभी देश और समाज का मङ्गल है।

ऐसी सुन्दर भावमयी पुस्तक के प्रकाशकों का प्रयास भी प्रशंसनीय है।

—लालजी सहाय, बी० ए०, काव्यतीर्थ

आशा का उदय

प का मनोहर होनहार मालूम होता है। इन दिनों पढ़ने-लिखने की ओर उसका ध्यान विशेष रूप से आकर्षित हुआ है, अच्छा परिश्रम करता है। अपने वर्ग के छात्रों में प्रथम रहा करता है। यों तो प्रायः उसके सभी विषय अच्छे हैं, किन्तु गणित और साहित्य की ओर उसका विशेष झुकाव है; इन विषयों में वह अपना जोड़ नहीं रखता है। यदि आप इसी प्रकार उसके पढ़ाने-लिखाने पर ध्यान लगाए रहें, तो लड़का अच्छा यश कमाएगा, प्रान्त का मुख उज्ज्वल करेगा, आदर्श जीवन लेकर संसार में विचरेगा।”

"मास्टर साहब ! मेरी चिर-सङ्गिनी दरिद्रता मनोहर के उन्नति-मार्ग में रोड़े अड़ाना चाहती है। इन दिनों मेरे जैसा अर्थसङ्कट संसार में किसी भले आदमी को नहीं होगा, समय के फेर से मुझ पर नित्य नई विपत्तियाँ आ पहुँचती हैं। एक से छुटकारा नहीं हो पाता कि दूसरी आ दबाती है। अपना रोना किसके आगे रोऊँ ? इस स्वार्थ-निकेतन संसार में कोई मेरी सुनने वाला नहीं है, जो कुछ होता है, कलेजा थाम कर सह लिया करता हूँ। अभी तक मैंने मनोहर की ओर कुछ ध्यान नहीं दिया है। स्कूल की फ़ीस भर किसी तरह दे दिया करता हूँ, लड़का रूखा-सूखा खाकर या कभी-कभी भूखा ही स्कूल जाया करता है। रात को पढ़ने के लिए चिराग़-बत्ती का भी प्रबन्ध नहीं कर सकता हूँ, पड़ोसी लड़कों के घर जाकर वह पढ़ा करता है। ऐसी अवस्था में मुझसे उसकी कितनी भलाई हो सकती है, इसका अनुमान आप स्वयं कर सकते हैं। आपके मुख से उसके होनहारपन का परिचय पाकर मुझको और भी दुःख हुआ, न मालूम ईश्वर ने ऐसे होनहार का जन्म मुझ दरिद्र के घर में क्यों दिया ? हा ! वन-कुसुम की भाँति उसका प्रतिभा-सौरभ क्या योंही नष्ट हो जायगा ?"

"आप इस प्रकार अधीर क्यों होते हैं ? ईश्वर आपके कष्टों को शीघ्र दूर करेंगे, किसी के सब दिन एक से

नहीं जाते हैं। मुझे आपके कष्टों का पता लग गया है। इसी विषय को कुछ देर ध्यान में रखने के बाद मैं आपके पास आया हूँ, यदि आपकी सम्मति हुई तो मैं सेवा-कार्य के लिए तैयार हो जाऊँगा, मुझसे जो थोड़ी-बहुत सहायता हो सकेगी, मैं उससे पीछे नहीं रहूँगा।"

"मास्टर साहब! आपकी सहानुभूति रहनी चाहिए। आप से इतनी ही सहायता चाहता हूँ, संसार में कोई अमर होकर नहीं आया है, क्या राजा क्या रङ्क—सभी को किसी न किसी दिन यहाँ से चलना ही पड़ेगा। ऐसी अवस्था में मैं उचित नहीं समझता कि किसी और को अपने दुःख का बोझ उठाने को कहूँ। मैंने निश्चय ही कोई बुरा कार्य किया होगा, जिसके फल-स्वरूप कष्टमय जीवन व्यतीत करना पड़ा है। मुझ पर आपकी कृपा है, इसी को मैं अपना अहोभाग्य समझता हूँ।"

"आपने अपने कर्तव्य को कह सुनाया, पर मैं भी तो मनुष्य हूँ, मुझको भी अपने कर्तव्य की ओर दौड़ना चाहिए। मनुष्य का धर्म है कि उससे जहाँ तक हो सके, दूसरे की भलाई करे। मैं भी अपना कर्तव्य पालन करने के लिए आप तक आया हूँ, आप क्यों मुझको अपना कर्तव्य पालन करने से वञ्चित करना चाहते हैं?"

"कहिए आपकी क्या आज्ञा है? किस लिए आपने मेरी पर्णकुटी तक आने का कष्ट किया है?"

"आपको मालूम होगा कि मैं दो महीने पूर्व आपके स्कूल में अध्यापक होकर आया हूँ, इसके पहले मैं शिक्षा-विभाग में कार्य नहीं करता था, पर बहुत दिनों से मेरी इच्छा थी कि शिक्षा-विभाग में प्रवेश करके कुछ सेवा करूँ, इतने दिनों के बाद मुझको अब यह सुअवसर मिला है।"

"आपकी बातों से मुझे आश्चर्य हो रहा है। लोग शिक्षा-विभाग से घृणा कर रहे हैं और आप वहाँ आने के लिए यत्नवान् थे?"

"शिक्षा-विभाग से घृणा करने वालों का विचार सङ्कुचित हुआ करता है, अधिक अर्थ-प्राप्ति की इच्छा रखने वाले ही ऐसा कहा करते हैं; लेकिन यदि विचार कर देखा जाय तो शिक्षा-विभाग ही सच्ची सेवा और दोनों लोक सुधारने का पावन स्थान है। तपोवन के तपस्वियों को राजप्रासाद का सुख फीका और दुखद प्रतीत होता है। हाँ, यदि सच्चा तपस्वी रहे तभी ऐसा होगा, तापस-वेष में वञ्चकों का तभी तक तापस-वेष रहता है, जब तक वे अपनी इच्छा की पूर्ति नहीं कर पाते हैं। अपने जीवन-यापन का कोई उपाय न देख कर सिर मुड़ा, चोटी कटा, अङ्गों में राख लपेट, झोला-तुम्बा लिए, भिक्षा-वृत्ति से उदर-पूजा किया करते हैं, उसी प्रकार शिक्षा-विभाग में भी अधिक कूड़े-कर्कट

भरे पड़े हैं, सच्चे शिक्षकों का अभाव है, इसी से लोग ऐसा कहा करते हैं।"

"आपका विचार बहुत पवित्र है, कहिए आपने किस लिए इस दरिद्र तक आने का कष्ट स्वीकार किया है?"

"क्या आप अपनी दुःख-गाथा मुझको सुना सकते हैं?"

"मेरी दुःख-गाथा सुनने की इच्छा आज तक किसी ने नहीं की, मेरे उन सुहृदों को, जिन्हें सब बातें मालूम थीं, उन्होंने मुझसे सम्बन्ध तोड़ देने की इच्छा की। अपनी बुरी अवस्था में रह कर मैंने भी उनका अपमान करना उचित नहीं समझा, इसी विचार से अपनी जन्म-भूमि छोड़ कर यहाँ आ ठहरा हूँ। जब से यहाँ आया हूँ, किसी प्रकार अपना समय व्यतीत कर रहा हूँ। आज आपके सुधा-सने वचनों से मुझे बड़ा सन्तोष मिला। अच्छा, अभी यहीं तक; फिर कभी अवसर पाकर अपनी रामकहानी सुनाऊँगा।"

"महाशय! आप किसी प्रकार का सङ्कोच न करें। संसार सुख-दुःख का क्रीड़ा-क्षेत्र है, सुखावस्था में मनुष्य को आनन्द की सीमा लाँघना नहीं चाहिए, और दुःखावस्था में सङ्कोच की सीढ़ी पर भी पैर नहीं धरना चाहिए। अपनी अवस्था पर किसी का गर्व या दुःख करना उसकी नासमझी प्रकट करता है। संसार परिवर्तनशील है, समय की चक्की की भाँति मनुष्यों की अवस्था में परिवर्तन

होना अनिवार्य है। अतएव इन सब बातों का विचार कर आप अपनी कष्ट-कथा कहने में किसी प्रकार का सङ्कोच न करें। विश्वास रहे, सुख-दुःख के दिन बादल की छाया की भाँति चञ्चल होते हैं।"

"आप मेरी दुःख-गाथा सुनना चाहते हैं, आपके इस आग्रह से मैं अपनी रामकहानी सुनाने के लिए विवश होता हूँ। लीजिए, कलेजा थाम कर सुनिए!"

"यदि आपको अपनी कष्ट-कहानी कहने में कुछ कष्ट मालूम होता है तो मैं उसे नहीं सुनना चाहता।"

"अपनी कष्ट-कहानी कहने से मेरे दुःख की नदी फिर उमड़ने लगेगी। सम्भव है, उससे आपको अधिक दुखी होना पड़े। मेरे ऊपर जितने अत्याचार हुए उनको सुन कर किस सहृदय को दुःख नहीं होगा?"

"यदि ऐसी बात है तो जाने दीजिए, मैं इस विषय में और कुछ नहीं सुनना चाहता हूँ, यदि आप उचित समझें और दुःख न मानें तो आपके पास कभी-कभी आया-जाया करूँ?"

"आपकी इस कृपा को मैं अपना सौभाग्य समझता हूँ। आप मुझ पर कृपा कर कभी-कभी दर्शन देने का कष्ट स्वीकार करेंगे, इसको मैं कष्टकर क्यों समझूँ? आज तक मेरी दुःखावस्था पर किसी को दया नहीं आई थी। कोई कभी भूल कर भी सहानुभूति-सूचक शब्दों का

सुनाना उचित नहीं समझता था। ऐसी अवस्था में आपकी यह अकारण कृपा मेरे भले दिन के आने की सूचना देती है। मैं धनी-मानी के घर जन्म लेकर अपने भाई-बन्धुओं से सताए जाने पर, नहीं-नहीं, अपने दुर्भाग्य से, अपने जन्म-स्थान को त्याग, इस छोटी-मोटी नौकरी से अपना जीवन यापन करने आया। घर वालों के लिए तो मैं मर चुका, कभी भूल कर भी किसी ने मेरी सुधि नहीं ली। यहाँ आकर भी मैं सुखी नहीं रह पाया। सब मिलाकर मेरे पाँच सन्तानें हैं, मनोहर तथा उसकी छोटी बहिनें हैं। माता उसकी महीने में प्रायः पच्चीस दिन बीमार ही रहती है। लड़कियों का स्वास्थ्य भी ठीक नहीं रहा करता है। दो लड़कियाँ विवाह के योग्य हो गईं, किन्तु अभी तक उनके लिए कोई प्रबन्ध नहीं हुआ। सिर्फ़ बीस रुपए महीने पर मैं एक सेठ के यहाँ मुनीमी करता हूँ। बस, ये मुद्रा ही हम सातों व्यक्तियों की एक-मात्र जीवन-बूटी समझिए! इस महा दुर्भिक्ष के समय इतने कम वेतन से एक सभ्य परिवार का निर्वाह होना कितना कठिन है, इसका अनुमान आप कर सकते हैं। एक सहृदय पड़ोसी के घर में रहता हूँ। अब वह बेचारा मुझ पर दया करके मकान का किराया नहीं लेता, इससे कुछ अवलम्बन है, अन्यथा न मालूम कैसी बीतती। सेठ जी की गद्दी से भी और किसी तरह की आमदनी नहीं है।"

"क्या घर वाले आपकी इस अवस्था से परिचित हैं?"

"घर वालों के षड्यन्त्र से ही मैं यहाँ भाग आया हूँ, यहाँ आए दश वर्ष बीत गए। इस लम्बी अवधि के बीच में न मैंने उनको याद किया और न उन्होंने ही मेरी सुधि ली है।"

"घर की जगह-ज़मीन में क्या आपका हिस्सा नहीं है?"

"है तो ज़रूर, किन्तु उन लोगों ने इतना तूल-मतूल दिखाया कि मैंने हिस्सा लेने की भी इच्छा नहीं की और चुपचाप अपने बाल-बच्चों के साथ यहाँ चला आया। यहाँ मेरा अभिन्न-हृदय एक बाल-सखा रहता था, उसी के बुलाने पर मैं यहाँ तक आया। उसने मेरी बड़ी सहायता की। सेठ के यहाँ उसी ने नौकरी लगा दी थी, किन्तु हाय मेरे दुर्भाग्य ने उसको भी मेरे आगे से उठा लिया! असमय में ही वह मेरा सच्चा सुहृद संसार से चल बसा × × ×" कहते-कहते वक्ता की आँखें आँसुओं से लबालब हो गईं। कण्ठ-स्वर भारी हो गया, आवाज़ रुक गई। उनकी यह अवस्था देख मनोहर के मास्टर बोले—"आप शोक न करें, ईश्वर करेगा तो शीघ्र ही आप के दुख-दिवस दूर हो जायँगे, बीती बातों के लिए चिन्ता कर शरीर को क्लेश न पहुँचाइए। इस संसार में कोई सदा के लिए रहने नहीं आया है, एक के बाद दूसरे को जाना ही पड़ा है और भविष्य में भी ऐसा ही होगा। लड़की

विवाह के योग्य हो गई, इसकी फ़िक्र भी छोड़ दीजिए। हाँ, उसके लिए उपयुक्त पात्र का अनुसन्धान करते रहिए। ईश्वर कार्य में आपकी सहायता करेगा, उसकी बड़ी लम्बी भुजा है, वह सबकी सुधि लिया करता है।"

"मुझको भी ऐसा ही विश्वास है, किन्तु ख़ाली हाथ काम कैसे चले? किसी प्रकार जीवन निर्वाह कर रहा हूँ। मेरे पास एक कौड़ी भी नहीं बचती। स्त्री के पास एक भी गहना नहीं है। आपसे क्या छिपाऊँ, मेरी अवस्था ऐसी चिन्तनीय है कि कष्ट का कलेजा भी काँप जाता होगा। पर क्या किया जाय, लाचारी है। आज तक मैंने किसी से किसी प्रकार की सहायता भी नहीं चाही है, यह इसलिए कि भिक्षा-वृत्ति से मृत्यु ही अच्छी है। किसी प्रकार रूखा-सूखा खाकर या भूखा रह कर भी घर में रहना ही अच्छा समझा है। स्त्री प्रायः रुग्णावस्था में ही रहा करती है। उसकी चिकित्सा भी अच्छे वैद्य वा डॉक्टर से नहीं करा सका हूँ। प्रथम तो मेरे पास नगद्नारायण ही नहीं, दूसरे ये महाशयगण प्रायः ऐसे हृदय-हीन हुआ करते हैं कि किसी की गिड़गिड़ाहट पर ध्यान नहीं देते। इसीलिए विवश होकर स्वयं वैद्यक ग्रन्थों को पढ़ कर आप ही औषधि बना लिया करता हूँ, अभी तक उसी से कार्य चल रहा है। समाज की अवस्था ऐसी बिगड़ गई है कि दीन-दुखियों की ओर किसी की दृष्टि ही नहीं दौड़ती,

कोई उसकी आर्तनाद की ओर कान भी खड़े नहीं करता। यों तो सभी समाजों में जा-जाकर लम्बे-चौड़े व्याख्यान देने वालों की कमी नहीं है, किन्तु उपदेश देने वालों में विरले ही ऐसे दीख पड़ते हैं जो उन पर स्वयं अमल करते हैं। जाति-सुधारकों का ध्यान समाज की कुप्रथाओं को दूर करने की ओर गया ही नहीं, तिलक-दहेज़ की कुप्रथा ऐसा ज़ोर पकड़ती जा रही है कि मेरे जैसे दरिद्रियों को लोक-लाज बचानी कठिन हो रही है। किसी प्रकार की स्थिति वाले के घर लड़की की ठहरौनी करने क्यों न जाय, पहले यही प्रश्न उठता है कि कितना देंगे? लड़की अच्छी है या बुरी, सुशीला है या कर्कशा, रूपवती है या कुरूपा—इसकी खोज भी नहीं होती। हाँ, नगदनारायण की कमी नहीं होनी चाहिए। ऐसी अवस्था में मुझसे कौन बातें करेगा, इसका अनुमान आप स्वयं कर सकते हैं।"

लम्बी साँस छोड़ते हुए मनोहर के मास्टर ने कहा—"अभी कुछ दिनों तक समाज इसी पतनावस्था में रहेगा, ईश्वर की कृपा हुई तो इसके भी जागृत-युग का शीघ्र उदय हो जायगा। वास्तव में अभी समाज में बहुत कुछ सुधार की आवश्यकता है। सुधारकों को निस्स्वार्थ सेवा करनी पड़ेगी, आँख फाड़ कर समाज के दुर्गुणों को देखना पड़ेगा। ख़ैर, इन बातों से अभी कुछ विशेष लाभ नहीं। सम्प्रति आप वही यत्न करें जिसमें आपकी

पुत्री का विवाह हो जाय। इस शुभ कार्य में आपके हाथ बटाने वाले बहुत हो जायँगे। पात्र का अनुसन्धान करने का यत्न करें। लड़का ठीक कर लेने पर मुझे भी सूचना देने की कृपा अवश्य करें। संसार में ऐसा कोई कार्य नहीं है जो यत्न करने से सिद्ध नहीं हो सकता। धैर्य को किसी अवस्था में भी नहीं त्यागना चाहिए। आप स्वयं सज्ञान हैं, मैं क्या समझाऊँ।"

"सच कहता हूँ, मेरे मित्र के स्वर्गवास होने के बाद आज तक किसी ने मुझसे इस प्रकार बातें नहीं की थीं। आपकी इन बातों से मेरा विचलित हृदय बहुत-कुछ सन्तोष-लाभ कर रहा है। ईश्वर आपका भला करें। आपके आज्ञानुसार अब मैं लड़के की खोज करूँगा। यों तो मन ही मन कई लड़के ठीक कर रक्खे हैं, किन्तु ख़ाली हाथ रहने के कारण उनके घर जाने का साहस नहीं होता था, क्योंकि समय की गति भी वैसी ही थी और अब भी है।"

"आपके मनोहर की उमर कितनी होगी?"

"यह सोलहवाँ वर्ष पूरा हो रहा है, उसकी बहिनें क्रमशः एक से दूसरी दो-दो वर्ष छोटी हैं। बड़ी लड़की चौदह वर्ष की है, अच्छी पढ़ी-लिखी है, गृह-कार्यों में भी दक्ष और सुशीला है।"

"आप विश्वास रक्खें, किसी योग्य पात्र के हाथ शीघ्र

ही आपकी बड़ी कन्या सौंपी जायगी; धन की उतनी आवश्यकता नहीं पड़ेगी, जो कुछ ज़रूरत समझी जायगी, उसकी पूर्त्ति भी परमेश्वर कर देंगे। अभी मैं इतना ही कह कर आपसे विदा होता हूँ, फिर कभी आकर मिलूँगा।" यह कह कर मास्टर साहब मनोहर के पिता से विदा हुए।

चिन्ता

नोहर के मास्टर को विदा कर सुशील बाबू अपनी स्त्री के कमरे में आए। इधर कई दिनों से उनकी धर्मपत्नी का स्वास्थ्य बहुत ख़राब था। उस दिन वे कुछ अच्छी थीं। मनोहर की बहिनें गृहकार्य को सँभाल लिया करती थीं। सुशील बाबू की चारों लड़कियों में रेवती बड़ी थी। माता की रुग्णावस्था में रेवती ही उनकी सेवा में रहती थी, उसकी छोटी बहिनें मिल-जुल कर दाल-रोटी बड़ी प्रसन्नता के साथ बना लिया करती थीं। रेवती अवकाश मिलने पर अपनी छोटी बहिनों को पढ़ाया करती थी और स्वयं अपनी माता और कभी-कभी पिता से भी पढ़ लिया करती थी। उस दिन सुशील बाबू के आने में विलम्ब देख उनकी धर्मपत्नी घबड़ा कर अपनी बड़ी पुत्री रेवती से कह रही थीं—"बेटी!

मेरे लिए तुम्हारे पूज्य पिता को बहुत कष्ट हुआ करता है, तुम भी दिन-रात मेरी चारपाई के पास पड़ी रहती हो, मनोहर भी बहुत उदास रहा करता है, तुम्हारी छोटी बहिनें भी कष्ट पा रही हैं, एक मेरे ही लिए तुम सबको इतना कष्ट हो रहा है, अतएव ईश्वर से प्रार्थना करो कि वे अब मुझे यहाँ से उठा लें, मैं जीवन की आशा छोड़ चुकी हूँ। किस सुख के लिए जीती रहूँ? देवता-समान स्वामी की सेवा कभी नहीं कर पाई, बल्कि उनसे ही सेवा करा रही हूँ। मालूम होता है, मैंने पूर्व-जन्म में बहुत पाप सञ्चय किया था। उसी का फल जीवन भर भोगती रही। परमात्मा से प्रार्थना है कि अब मुझे पाप से मुक्त करें।"

माता के मुख से इतनी बातें सुन कर रेवती बोल उठी—माँ! रुग्णावस्था में इस प्रकार की चिन्ता क्यों किया करती हो? मेरा अनुमान है कि अब तुम्हारा रोग निर्मूल हो जायगा। इस बार तुम्हारी मुख-कान्ति कुछ और ही मालूम होती है। तुमको उचित है कि हम सबको धैर्य बँधाओ। इस अवस्था में तुमने आँख मूँद लेने का विचार क्यों किया? इस ओर दृष्टि क्यों नहीं दौड़ातीं कि तुम्हारे इन अनाथ बच्चों के आँसू कौन पोंछेगा। पिता जी रात-दिन हम लोगों के लिए दाने जुटाने की फ़िक्र में रहा करते हैं। भैया की अभी उमर ही कितनी है, स्कूली पुस्तकें पढ़ने का भी समय नहीं पाते।

सुशील बाबू कमरे के बाहर खड़े हो इन बातों को सुन रहे थे। रेवती की बातों से उनकी आँखें छलछला आईं। रूमाल से आँसुओं को पोंछते हुए उन्होंने कमरे में प्रवेश किया। उनको आते देख रेवती बाहर निकल आई। सुशील बाबू पत्नी के निकट बैठ कर बोले—आज तुम्हारी तबीयत कैसी है?

"आज रोग विदा हुआ प्रतीत होता है। कहिए, आप इतनी देर तक कहाँ थे?"

"मैं तो तभी आ गया होता, परन्तु रास्ते में मनोहर के मास्टर साहब से भेंट हो गई। बेचारे बड़े भले आदमी मालूम हुए। उनको मेरी अवस्था पर बड़ा दुःख हुआ। मालूम होता है, वे भी दुःख झेल चुके हैं, अन्यथा दुखियों से ऐसी सहानुभूति न दिखाते।"

"आप कहा करते थे कि मनोहर का मास्टर अभिमानी है, निर्दयी और कर्कश है, फिर आपने उनको अच्छा कैसे पाया?"

"मैं उसके हेडमास्टर के विषय में कहा करता था। ये कोई नए अध्यापक कहीं दूसरी जगह से आए हैं। वे इसके पहले शिक्षा-विभाग में कार्य भी नहीं करते थे। उनकी बातों से मुझको बहुत कुछ आशा हुई है, सम्भव है, इस दुःखावस्था में वे मेरा हाथ बटावें।"

"आपका हृदय बड़ा स्वच्छ है—आप बड़े साधु-

प्रकृति के हैं, यही कारण है कि आप इस दुःखावस्था में सड़ रहे हैं। आप सबके हृदय को अपना ही जैसा पवित्र समझते हैं। दुःख है कि इस प्रकार धोखा खाने पर भी अभी तक आपकी आँखें नहीं खुलीं। आपने अपनी आँखों से भाई की धोखेबाज़ी देखी। अपना ख़ून पसीना कर आपने जिसके सुख का मार्ग खोल दिया, अपने ऊपर कष्ट उठाकर जिसको अङ्गरेज़ी पढ़ाई, अपना पेट काट कर जिसको पढ़ने का ख़र्च दिया, स्त्री का भूषण बन्धक रखकर जिसको पुस्तकें ख़रीद दीं, जो आपका सहोदर था, वह तो आपको पीछे धोखा दे गया, यहाँ तक कि आपको घर से भी बाहर निकाला, फिर आप दूसरों पर इस प्रकार एक दिन की भेंट से झट विश्वास कर बैठते हैं।"

"तुम भूलती हो, संसार में सबकी बुद्धि एक ही सी नहीं होती। गुलाब ने मुझे धोखा दिया, विश्वासघात किया, इसका अर्थ यह नहीं कि संसार में सब उसी के समान कृतघ्न हैं। संसार में एक से एक भले और एक से एक बुरे विचार वाले मनुष्य हैं।"

"जो कुछ हो, पर अङ्गरेज़ी पढ़े-लिखों में अधिक कृतघ्न ही निकलते हैं। ऐसे एक ही नहीं, अनेक उदाहरण आँखों के आगे नाच रहे हैं, इसीलिए मेरा विचार था कि मनोहर को अङ्गरेज़ी न पढ़ाई जाय, किन्तु आपका

अधिक आग्रह देख कर मैं चुप हो गई। यदि मनोहर भी वैसा ही निकला तो सब किया-कराया नष्ट हो जायगा, बुढ़ापे में भी बड़े-बड़े कष्ट सहने पड़ेंगे।"

"भविष्य में क्या होगा, कौन जानता है? मैं मानता हूँ कि सिर्फ़ अङ्गरेज़ी पढ़ने वालों के विचार बेशक बदल जाते हैं, किन्तु क्या किया जाय, लाचारी है। अभी वही अर्थकरी विद्या है, अङ्गरेज़ी पढ़े-लिखे ही दो पैसा अर्जन कर पाते हैं। और अभी उन्हीं का सम्मान भी है।"

"चाहे जो कुछ हो, किन्तु मनोहर को अङ्गरेज़ी न पढ़ने दीजिए। तभी मङ्गल है, अन्यथा पीछे पश्चात्ताप करना पड़ेगा।"

"यह तुम्हारी भूल है। विद्या पढ़ने से किसी को न रोकना चाहिए। थोड़ी देर के लिए मैं यह भी मानने को तैयार हूँ कि मनोहर पढ़-लिख कर हम सबों की ओर ध्यान नहीं देगा, न सही; उससे हम सबों को कष्ट भी हो तो उसकी चिन्ता नहीं, वह आप अपनी तो सँभालेगा। आज गुलाब ने मुझको धोखा दिया, उसकी भी मुझे चिन्ता नहीं है। जब मैंने अपना कर्तव्य पालन किया है और कर रहा हूँ तो फिर इन सब बातों की ओर ध्यान देना न होगा। विश्वास रहे, सब अपने ही किए का फल भोगा करते हैं, मैंने भी पूर्व-जीवन में किसी के साथ कृतघ्नता की होगी, उसी का फल मुझको मिल रहा है।

गुलाब ने मेरे साथ विश्वासघात किया है, इसका फल उसको मिलेगा।"

"आप तो इसी प्रकार पारलौकिक बातों द्वारा सबकी बातों को काट दिया करते हैं। यह कलियुग है, इसमें सत्ययुग जैसा व्यवहार करना मानो कष्ट का बोझ सिर पर लादना है। आप गुलाब की धोखेबाज़ी पर घर छोड़ कर क्यों आए? क्या उस घर पर आपका अधिकार नहीं था? परदेश में आकर इस प्रकार दुःख झेलना सहर्ष स्वीकार किया, किन्तु उस दुष्ट के कार्य का प्रतिवाद नहीं किया। इस तरह के व्यवहार से वैसे मनचले आदमी का मन बढ़ता ही जाता है। उसकी देखा-देखी दूसरे भी बिगड़ते हैं। इससे समाज में कुरीतियों की जड़ें जमती हैं।

"रेवती की अवस्था विवाह के योग्य हुई, किन्तु अभी तक उसकी चर्चा भी नहीं होती है। आपको अर्थ-सङ्कट में पड़ा देख मैं कुछ कहती भी नहीं हूँ, लेकिन अब चुप रहने से कार्य नहीं चलेगा। लड़की जन्म भर कुवाँरी ही नहीं रहेगी, चाहे जिस प्रकार हो उसका प्रबन्ध तो करना ही पड़ेगा। आप भी इन बातों को विचार कर देखें।"

"मैं तुम्हारी बातों के उत्तर में अभी सिर्फ़ इतना ही कहना चाहता हूँ कि तुम रुग्णावस्था में हो, इतनी चिन्ता न किया करो। मुझको यह सब चिन्ता है, जगत्पालक

दीनबन्धु परमेश्वर की भुजा बड़ी लम्बी है, वे मेरा आवश्यकता की ओर ध्यान देते होंगे, मैंने अपना प्रार्थना-पत्र उनकी सेवा में अर्पण कर दिया है। वे उस पर विचार कर चुके होंगे। विश्वास रक्खो, कोई प्रबन्ध कर देंगे।"

"तो क्या चुपचाप उनके नाम की माला ही जपते रहेंगे या हाथ-पैर भी हिलाएँगे? कुछ करना भी तो चाहिए।"

"मैं चुपचाप नहीं हूँ और न रहूँगा, धैर्य रक्खो, धैर्य से ही सब कार्य हुआ करते हैं। परमात्मा चाहेंगे तो सब भला ही होगा, आज मनोहर के मास्टर को किसने मुझ तक पहुँचाया?"

पिता का कहना भी पूरा नहीं हुआ था कि मनोहर कमरे में आकर बोला—बाबू जी! आज चचा की चिट्ठी आई है, वे बड़ी दुःखावस्था में पड़े हैं। उन्होंने क्षमा माँगते हुए आपका स्मरण किया है, दर्शन के इच्छुक हैं।

सुशील—क्या गुलाब ने मुझको पत्र लिखा है?

मनोहर—जी हाँ।

सुशील—उसको तुम पहचानते हो?

मनोहर—अपने चचा को पहचानना क्या कोई बड़ी बात है?

सुशील—तुमने उसको कब और कहाँ देखा?

मनोहर—बाल्यावस्था में, अपने घर पर।

सुशील—तब की बातें तुम्हें स्मरण हैं?

मनोहर—थोड़ी-थोड़ी स्मरण हैं।

सुशील—यह पहला ही पत्र है या और कभी आया था?

मनोहर—पत्र बराबर आया करते थे, किन्तु मैं भय से आपको या माता जी को नहीं दिखाया करता था, क्योंकि माता जी न मालूम क्यों चचा जी का नाम सुनकर बिगड़ जाती थीं।

मनोहर की माँ—बुरा क्या करती थी बेटा? तुम्हारे चचा के समान विश्वासघाती संसार में खोजने से भी नहीं मिलेगा। उसी के कारण आज मैं स्वामी-बच्चों के साथ राह की भिखारिन हुई हूँ। मैंने या तुम्हारे पिता जी ने उसको सन्तान की भाँति स्नेह से पाल रक्खा था, किन्तु उसका फल उसने ऐसा दिखाया कि शत्रुओं के साथ भी लोग ऐसा व्यवहार नहीं करते होंगे। मुझको इस बात से बड़ा दुख हो रहा है कि तुम पुनः उसी मक्कार के पाप-चङ्गुल में फँसा चाहते हो। कभी भूल कर भी उसको पत्र नहीं लिखना चाहिए। तुमको उसकी विपत्ति से क्या काम है? उसने तुम लोगों के साथ कितनी निर्दयता की है, उसका स्मरण करने से रोंगटे खड़े हो जाया करते हैं। अब कभी भूल कर भी उसको पत्र न लिखना।

सुशील कमरे से बाहर आकर बोले—मनोहर! पत्र कहाँ है! देखूँ क्या लिखता है?

पिता की बातें सुन कर मनोहर ने बड़ी शीघ्रता से गुलाब बाबू का पत्र लाकर उनके हाथ में रख दिया। सुशील बाबू ने बड़ी उत्सुकता से पत्र खोल कर पढ़ना आरम्भ किया। वे पूरा पत्र पढ़ भी नहीं पाए थे कि उनकी आँखें आँसुओं से भर आईं। हृदय में बन्धु-प्रेम की सरिता उमड़ आई। पत्र यों थाः—

प्रिय वत्स मनोहर !

भगवान् तुमको चिरायु प्रदान कर वंश की मर्यादा बढ़ाने वाला बनावें। तुम्हारे कई पत्र आए, मैंने कभी-कभी किसी का उत्तर भी दे दिया है। बहुत दिनों के बाद मेरी आँखें खुलीं। मैं बड़ा अपराधी हूँ, मैंने पिता के समान प्यार करने वाले बन्धु को बड़ा कष्ट पहुँचाया। मेरी ही नीचता से वे अज्ञातवास कर रहे हैं। स्वार्थ की पट्टी मेरी आँखों पर लगी थी। उसी ने मुझे इस दुर्गम गर्त में गिराया। माता के समान स्नेह रखने वाली भाभी का मैंने अपमान किया। अब किस मुँह से उनके आगे क्षमा माँगने चलूँ ? अन्तिम समय में उनके पूज्य पद-कञ्ज के दर्शन की अभिलाषा थी, किन्तु नहीं, मैं ऐसा नहीं चाहता। मुझको इसी प्रकार घुल-घुल कर मरने दो। यही मेरे दुष्कर्मों का सच्चा प्रायश्चित्त है। मैंने जिसकी आशा की थी, जिसकी मन्त्रणा से ऐसा किया था, आज वह भी धोखा देना चाहती है। भैया और भाभी जी से मेरा प्रणाम

कहना। तुम यत्नपूर्वक पढ़ना। अब यही मेरा अन्तिम पत्र है। इसके बाद × × ×

तुम्हारा शुभचिन्तक,

गुलाब

ज्यों-त्यों करके सुशील बाबू ने पूरा पत्र पढ़ा। उसे पढ़ते ही कुछ देर के लिए वे ज्ञानहीन हो गए। जब कुछ चैतन्य हुए तो लम्बी साँस छोड़ते हुए बोले—हाय! गुलाब भारी विपत्ति में पड़ गया। जिसके लिए मैंने स्वयं कष्ट सहन किए, पर उस पर आँच नहीं आने दी, क्या आज उसकी विपत्ति में मेरा यह शरीर उसके काम नहीं आएगा? नहीं, कभी नहीं, मुझसे उसका कष्ट नहीं देखा जायगा। मनोहर की माता भी मना करे तो मैं कभी नहीं मानूँगा। वह मेरा सहोदर है, एक ही माता की गोद में दोनों पले हैं, फिर यह कैसे हो सकता है कि मैं जीते हुए उसका दुःख देखूँ? उसकी बुद्धि परिपक्व नहीं हुई थी, इसलिए उसने मेरे साथ वैसा व्यवहार किया। नासमझ धर्मपत्नी के कहने में रह कर मेरा अपमान किया करे, उसकी चिन्ता मुझको नहीं है। बाल्यावस्था ही में माता-पिता स्वर्गवासी होते समय गुलाब को मेरे हाथ सौंप गए थे। आज मैं उसको इस दुःखावस्था में तड़पते कैसे देख सकता हूँ।

पिता को इस प्रकार बहुत देर तक बोलते देख

मनोहर को भय हुआ कि कहीं ऐसा न हो कि इस प्रकार बोलते-बोलते ये उन्मादग्रस्त हो जायँ। इसलिए पिता को धैर्य दिलाते हुए बोला—"पिता जी! आप इस प्रकार अधीर न हों, यत्न करने से विपत्ति-बाधाएँ दूर हो जाती हैं। आज रात की गाड़ी से हम सबों को अपने घर चलना चाहिए, मालूम होता है, चचा अस्वस्थ हैं, इसीलिए उन्होंने ऐसा लिखा है। ऐसी अवस्था में वहाँ चलकर यत्न करने से वे अवश्य अच्छे हो जायँगे। माता जी भी ऐसे समय में वहाँ चलने को अवश्य तैयार हो जायँगी।"

पुत्र के मुख से इतनी बातें सुनकर सुशील बाबू के हृदय में आशा का सञ्चार हुआ। वे उसी समय पत्र लेकर पुनः अपनी धर्मपत्नी के निकट जाकर बोले—गुलाब बड़ी दुःखावस्था में पड़ा है। उसका पत्र पढ़ लो।

मनोहर की माता गुलाब का नाम सुनकर झुँझला उठी, किन्तु स्वामी के अधिक आग्रह पर उसने देवर का पत्र पढ़ना आरम्भ किया। पत्र पढ़ते ही उसके मुख का भाव बदल गया। घृणा दया में, और क्रोध वात्सल्य में बदल गया। आँखों में आँसू भर कर बोली—जितना शीघ्र हो सके, गुलाब के पास चलने का यत्न कीजिए। उन पर भारी विपत्ति आ पहुँची है, तभी ऐसा पत्र लिखा है।

आशा की आशा
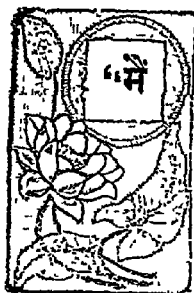
आप से बहुत दिनों से कहती आती हूँ कि आप मेरी बातों पर विश्वास करें, इस संसार में जिसके हाथ चार पैसे हैं, वह बुद्धिमान और कुलीन है, किन्तु आपने मेरा कहना नहीं माना। अपने परिश्रम से कमाए हुए रुपए को पानी की तरह बहाते रहे, सञ्चय की ओर कभी ध्यान ही नहीं दिया। अब तो वह आमदनी भी नहीं रही। बरसात की बाढ़ की भाँति आए हुए रुपयों को बहा दिया। ख़ैर, अब भी तो हाथ समेटिए। उस नौकरी को लात मार कर अध्यापकी पर आरूढ़ हुए। अब इस पर भी तो सँभलिए, जब अभी से दो पैसे बचा कर नहीं रक्खोगे तो बुढ़ापे में किसके आगे हाथ पसारने जाओगे। ईश्वर ने पुत्र भी तो

नहीं दिया कि बुढ़ापे में उसी की कमाई की आशा की जाय। इतना ही नहीं, एक लड़की भी तो है, उसके लिए भी तो कुछ प्रबन्ध करना चाहिए! मान लिया कि अभी वह बच्ची है, किन्तु फिर चार-पाँच वर्ष के बाद ही तो विवाह के योग्य हो जायगी, अभी से कुछ न कुछ उसके विवाह के लिए बचाना आवश्यक है। आशा है, मेरी इन बातों पर आप विचार करेंगे!"

"अजी! तुम मुझको हमेशा तङ्ग किया करती हो, मैं क्या नासमझ हूँ? मुझको इन सब बातों का पूरा ध्यान है, लेकिन मुझसे ऐसा कार्य नहीं होगा, जिससे न्याय-नीति की हत्या करनी पड़े। मैं वैसी नौकरी को दूर से ही दण्डवत् करता हूँ, जिसमें रह कर अपने भाई-बन्धुओं पर अत्याचार करना आवश्यक हो। मैं वैसे रुपयों पर थूकता हूँ, जो अनीति से संग्रह किए जाते हैं। मैं वैसी विधवाओं के दुःखमय जीवन को भला समझता हूँ, जो पुंश्चला अवस्था में रह कर अच्छा भोजन-वस्त्र पाती हैं। खर्च के विषय में तुम मुझसे बारम्बार कह रही हो, किन्तु मैं अपने विचार से विवश हूँ, मुझसे दूसरे का दुख नहीं देखा जाता। अपने शरीर पर कष्ट उठा कर दूसरे का उपकार करना ही मनुष्योचित धर्म है। सच कहता हूँ, मुझसे किसी का दुख देखा नहीं जाता। पास में पैसा रखने से उसे साहाय्य कार्य में लगा देना ही श्रेय है। आज भी एक

भले मनुष्य को सहायता का वचन दे आया हूँ, जीवन रहते अपने वचन का अवश्य पालन करूँगा।"

"आपसे और क्या हो सकेगा? आप औरों की सहायता के लिए तो उतावले रहा करते हैं, किन्तु अपना भी कुछ ध्यान है?"

"मेरे लिए परमात्मा है। तुम इस प्रकार मेरे कार्य-मार्ग में रोड़े मत अटकाया करो। तुमको उचित है कि ऐसी अवस्था में मेरा हाथ बटाओ। लड़का नहीं है तो क्या हुआ, उसकी चिन्ता मैं भूल कर भी नहीं करता। जैसा लड़का वैसी लड़की, क्या किसी के लड़के से मेरी आशा कम है?"

"कम कैसे नहीं है, आशा आपकी नहीं है, उसको दूसरे की धरोहर समझिए। धरोहर का रखना कितना कठिन और उत्तरदायित्व-पूर्ण है, इसका अनुमान आप स्वयं कर सकते हैं। आपको मैं क्या समझाऊँ। मैं नासमझ नारी हूँ। इस संसार में बहुत कम मनुष्यों के आप जैसे विचार हैं और जो आपके समान विचार वाले हैं वे ही दुखी हैं।"

"मैं दुख-सुख को एक समान समझता हूँ, दुख में भय खाना और सुख में आनन्द मनाना व्यर्थ है। तुम चुपचाप देखती रहो कि ईश्वर क्या करता है। आशा के लिए चिन्ता न करो, मैं अभी से उसके लिए प्रबन्ध कर

चुका हूँ। ठीक उसी के समान रूप-गुणवान एक लड़का ठहरा रक्खा है। समय आते ही आशा को उसके हाथ सौंप दूँगा, लड़के की होनहार अवस्था अभी से मालूम होती है। उसके देखने से भूख-प्यास भी हरण हो जाती है। अपने कुल में कमल है।"

"लड़का कहाँ ठीक किया है? उसके घर की अवस्था कैसी है? माता-पिता किस अवस्था में हैं?"

"लड़का सौ में एक है, आर्थिक अवस्था उसकी अच्छी नहीं है, पिता छोटी-मोटी नौकरी करके अपने परिवार का पालन करता है। लड़का मेरे ही स्कूल में पढ़ता है, अपने वर्ग के लड़कों में प्रथम रहा करता है, सरकारी छात्रवृत्ति तो अवश्य पाएगा, साथ ही साथ ईश्वर की कृपा हुई तो प्रान्त में अच्छा नाम प्राप्त करेगा।"

"जो कुछ हो, वैसे जन्म-दरिद्री के घर आशा का विवाह नहीं करूँगी; रूप-रङ्ग को लेकर क्या वह चाटेगी ऐसे कङ्गाल के घर विवाह करने के पहले उसको काट कर गड्ढे में दाब देना अच्छा है। छिः! जान-बूझ कर वैसे दरिद्र के घर आप अपनी एक-मात्र सन्तान को कैसे सौंपना चाहते हैं। यदि दो-चार सन्तानें होतीं तो न मालूम आप क्या करते, विष खिला कर मार देते। हाथ में रुपए न रहने के भय से आप ऐसा सस्ता सौदा ख़रीदने के विचार में हैं। आप अपनी कमाई रहने दीजिए,

अभी मेरे पास पिता का दिया हुआ दो हज़ार रुपयों का गहना है, मैं उन्हीं को बेच कर आशा की आशा पूरी करूँगी। आपकी ओर से मैं बहुत पहले ही निराश हो चुकी थी। भाई को पत्र लिखती हूँ, वे ही इसका प्रबन्ध करेंगे, मैं प्राण रहते इस प्रकार पुत्री के सुख की हत्या नहीं करने दूँगी। आपको परोपकार सूझा है, आप अपने कर्तव्य का पालन कीजिए।"

पत्नी के इन वचनों पर अध्यापक कैलाशचन्द्र हँसते हुए कमरे से बाहर चले आए। बाहर के कमरे में आकर कुर्सी पर बैठ, समाचार-पत्र पढ़ने के विचार में थे कि मनोहर उनके आगे खड़ा हो हाथ जोड़ कर बोला—मास्टर साहब! एक बड़ी आवश्यकता आ पड़ने पर सेवा में उपस्थित हुआ हूँ।

कैलशबाबू प्रेमपूर्वक मनोहर का हाथ पकड़ते हुए बोले—वत्स! किस लिए ऐसी रात में यहाँ दौड़ कर आए? मुझसे जो कुछ कार्य हो सके, मैं पूरा करने को तैयार हूँ। जो कुछ हो निस्सङ्कोच होकर कहो।

मनोहर—बाबू जी को आज के तीसरे दिन वेतन मिलेगा, किन्तु कुछ ऐसी आवश्यकता आ पड़ी कि उनकी सम्मति बिना ही आप तक आया हूँ। मुझे दस रुपए प्रदान करने की कृपा हो। ये रुपए परसों आपको लौटा दूँगा। बड़ी विपत्ति आ पहुँची है।

कैलाश बाबू—रुपए की चिन्ता न करो। बताओ कौन सी विपत्ति आ पहुँची? इस घर को तुम अपना ही समझा करो, किसी प्रकार का सङ्कोच न किया करो।

मनोहर—चचा जी बहुत सङ्कटावस्था में पड़ गए हैं। आज हम सब उनको देखने जा रहे हैं, किन्तु राह-ख़र्च नहीं है। पिता जी ने आज तक किसी से पैसा उधार नहीं लिया है। माता के पास भी कुछ नहीं है, अन्यथा आपको कष्ट देने न आता। आपसे सहायता मिलने की आशा से ही दौड़ कर आया हूँ।

कैलाश "थोड़ी देर ठहरो, मैं भीतर से रुपया लाए देता हूँ" कह कर भीतर चले गए। वहाँ अपनी धर्मपत्नी से रुपए की आवश्यकता सुनाई। उनकी धर्मपत्नी ने उसी समय अपने ट्रङ्क से पाँच-पाँच रुपए के दो नोट निकाल कर उनके हाथ में रख दिए। रुपया पाकर कैलाश बाबू ने मनोहर को भीतर ही बुलाया। किसी अपरिचित आदमी को भीतर बुलाते देख, उनकी धर्मपत्नी कमरे में छिपने चलीं। उनको वैसा करते देख कैलाश बाबू ने उन्हें रोक कर कहा—कोई दूसरा आदमी नहीं है, एक छोटा सा लड़का है। ठहर कर उसे देख लो। तुम्हारे देखने के लिए ही उसको यहाँ तक बुलाया है। इधर उनका कहना पूरा हुआ, उधर से मनोहर की मोहिनी मूर्ति सिर नीचा किए उनके आगे आ खड़ी हुई। कैलाश बाबू मनोहर के हाथ में रुपए

देकर बोले—जब कभी किसी वस्तु की आवश्यकता आ पड़े, तुम यहाँ आकर उन वस्तुओं को ले जाया करो। इस घर को अपना घर समझो, किसी प्रकार का सङ्कोच न करना। इसके बाद अपनी धर्मपत्नी से बोले—तुम भी इस लड़के को अपना ही लड़का समझो।

मनोहर ने अपने अध्यापक की बातें सुनते ही उनकी धर्मपत्नी का चरण छूकर प्रणाम किया। चरण छूते देख आशा की माता लजा कर पीछे हट गईं। मनोहर उनको प्रणाम कर अपने घर की ओर चला। उसके चले जाने के बाद कैलाश बाबू ने अपनी धर्मपत्नी से कहा—यही लड़का है, इसी को मैं आशा के लिए ठीक करना चाहता हूँ। तुमने भी देख ही लिया, आज से यह यहाँ आया-जाया करेगा। इसके शील स्वभाव की भी परीक्षा ले लेना। लड़का देखने में एक है। पढ़ने में भी स्कूल में एक ही समझा जाता है।

आशा की माता—सब तो ठीक है, लेकिन धनहीन है, यदि लक्ष्मी-पात्र होता तो सोने में सुगन्ध था। सचमुच ही अत्यन्त रूपवान् है, शील-स्वभाव का भी अच्छा ही होगा। सब प्रकार से मेरी आशा के योग्य था, किन्तु अर्थहीन होने से इससे आशा की आशा पर पानी ही फिरता रहेगा!

कैलाश बाबू—यह तुम्हारी भूल है, ईश्वर चाहेगा तो यही लड़का कुछ दिनों के बाद संसार के सभ्य-समाज

में ऊँचा स्थान पाएगा। विद्या-बल से अच्छे धनियों द्वारा आदर पाएगा। लक्ष्मी तो इसके पीछे आप ही दौड़ा करेगी। अस्तु, तुम किसी प्रकार का सोच-विचार न करो। मेरे प्रस्ताव को स्वीकार कर लो। परमात्मा इसी में हमारा कल्याण करेंगे।

आशा की माता—मुझसे इस विषय में और कुछ मत कहिए। आप जो कुछ उचित समझें, कीजिए। लड़की आप ही की है, मेरी नहीं। यश-अपयश आप ही को होगा, गड्ढे में फेंकिए या जीवित रखिए। मैंने तो अपने को तभी से हतभागिनी समझ लिया है जब से पुत्र-रत्न से अपनी गोद ख़ाली देखी है। आप पढ़े-लिखे बुद्धिमान् हैं, आपके आगे मेरा विचार कारगर नहीं हो सकता, व्यर्थ ही आप इन सब बातों की चर्चा मुझसे किया करते हैं।

कैलाश बाबू धर्मपत्नी को समझाते हुए बोले—तुम मेरी बातों पर विचार नहीं करती हो—बिना समझे-बूझे बिगड़ बैठती हो। यदि मैंने अपना विचार तुम्हारे आगे रक्खा तो कौन सा बुरा कार्य किया? तुमको उचित है कि अपना उचित विचार प्रकट करो, दोनों की सम्मति से जो स्थिर होगा, वही कार्य किया जायगा। सोच-विचार कर अपनी सम्मति प्रकट करने के बदले तुम कुपित हो जाया करती हो। यदि मुझसे कोई भूल हो रही हो तो

उसे दिखलाओ। यदि वह वास्तव में भूल है, तो मैं उसे अवश्य मान लूँगा।

पत्नी—नाथ! आप मुझ नासमझ अबला का कहना क्या कभी स्वीकार कर सकते हैं, इसकी जाँच मैंने कई बार कर ली है, आप व्यर्थ मुझसे पूछ-ताछ करते हैं। पुलिस-विभाग की नौकरी छोड़ते समय भी मैंने बहुत समझाया था, किन्तु उस समय भी आपने मेरे वचन पर कुछ ध्यान नहीं दिया और वही किया जो करना चाहते थे। फिर इस बार आप पूछ-ताछ कर रहे हैं, लेकिन करेंगे वही जो मन में विचार लिया होगा।

कैलाश बाबू—पुलिस-विभाग की नौकरी की अड़चनें मुझको मालूम थीं। बहुत समझाने पर भी तुम उसको नहीं समझ सकीं, इसलिए तुम्हारे कहने की ओर मैंने ध्यान नहीं दिया, क्योंकि तुम्हारा ध्यान सिर्फ़ उसकी आमदनी की ही ओर था। यदि उस विभाग से मैं त्याग-पत्र न देता तो बहुत शीघ्र ही वहाँ से हटा दिया जाता। लोभ-वश मैंने ऐसा कुछ कार्य कर दिया था जिसका भण्डा-फोड़ होने पर मेरी नौकरी न रहती। कार्य करने के समय मेरा ध्यान उस ओर न गया था। हाँ, कार्य हो जाने पर अपनी भूल सूझ पड़ी। उस विभाग में मैंने कई वर्ष तक काम किया, रुपए भी कम नहीं मिलते थे, किन्तु न मालूम क्यों मुझको वहाँ उतना सुख नहीं मालूम होता था जितना

यहाँ—यद्यपि शिक्षा-विभाग में मुझे रुपए कम मिलते हैं तथापि यह नौकरी अच्छी है। कारण, यहाँ सर्वदा धर्म-चर्चा हुआ करती है, उपदेश-सरिता हृदय-स्थल में उमड़ती रहती है, पवित्र-प्रेम की मन्दाकिनी प्रवाहित होती रहती है, सुविचार की त्रिवेणी लहराया करती है। यहाँ थोड़ी आमदनी में भी कभी हाथ ख़ाली नहीं रहता है। अपनी आवश्यकताएँ पूरी होती रहती हैं। वहाँ अधिक आमदनी पर भी सदा हाथ तङ्ग रहा करता था, ऐसी शान्ति नहीं मिलती थी।

पत्नी—इसी लिए तो कहती हूँ कि आप जो कुछ करेंगे अच्छा ही करेंगे—मेरा उसमें दख़ल देना ठीक नहीं।

मिलन

“आज कई दिन हुए, पर अभी तक कुछ उत्तर नहीं आया। मालूम होता है, मेरा अपराध क्षमा नहीं हुआ। मनोहर ने भाई साहब को पत्र अवश्य दिया होगा। भाई साहब का हृदय वैसा कड़ा नहीं है कि पत्र पाकर भी न पसीजता, किन्तु मेरे दुर्भाग्य ने उनके मन को विमुख कर दिया। नहीं नहीं, मुझसे काम ही ऐसा हुआ है। उनके साथ मैंने जैसा व्यवहार किया है, संसार में कोई शत्रु के साथ भी वैसा व्यवहार नहीं करता। छिः, जिसके कहने में आकर मैंने अपने अग्रज से ऐसा व्यवहार किया वह भी आज इस दुखावस्था में काम नहीं आती। मैं चारपाई पर पड़ा-पड़ा कराहता हूँ और वह अपनी सखी-सहेलियों के साथ आनन्द मनाती है। ‘पानी-पानी’ की रट लगाने पर भी पास नहीं आती है। जब कभी आती भी है तो

क्रोध-भरी दृष्टि डालती है। हाय ! मैंने बड़ा अपराध किया। नासमझ स्त्री के कहने में पड़कर पिता के समान पूजनीय जेठे भाई के साथ विश्वासघात किया। साधु का अंश अपहरण किया, माता के समान स्नेह रखने वाली भाभी पर हाथ उठाया ! परमात्मा विलम्ब क्यों कर रहे हो, इस चाण्डाल के सिर पर वज्र क्यों नहीं गिराते हो !" यह कह कर गुलाबचन्द बच्चों की भाँति सिसक-सिसक कर रोने लगे। घर में उनकी धर्मपत्नी सावित्री के अतिरिक्त कोई नहीं था, सिर्फ़ एक बुढ़िया दासी, जो रात-दिन वहाँ रहा करती थी, चौका लगा रही थी। सावित्री अपनी शय्या पर लेटी थी। गुलाब बाबू महीनों से रुग्णावस्था में चारपाई तोड़ रहे थे। ज्वर पारी बाँध कर आया करता। इतने दिनों के ज्वर से उनकी अवस्था बड़ी चिन्तनीय हो गई थी। हाथ के रुपए भी दो-दो, चार-चार करके सब निकल गए। स्त्री भी किसी समय उनके निकट बैठ कर प्रेमपूर्ण बातें नहीं करती थी, उनके इष्ट-मित्र भी इस दुखावस्था में उनके पास सहानुभूति-सूचक शब्द सुनाने नहीं आते थे। इन सब कारणों से गुलाब बाबू का चित्त विशेष व्याकुल था। इसी लिए उन्होंने अपने भाई को पत्र लिख दिया था। उस दिन वे बहुत देर तक पड़े हुए सिसकते रहे, पर सावित्री उनके पास नहीं आई। दासी किसी कार्यवश उनके कमरे में

गई तो उनको रोते पा सावित्री के निकट आकर बोली— बाबू न मालूम कब से रो रहे हैं और तुम चादर तान कर सो रही हो। छिः, बड़े घर की बहू-बेटियों की यह चाल? तुमको जिस पर अभिमान है उसी की यह अवस्था है और तुम्हारा हृदय पत्थर से अधिक कठोर हो गया? राम-राम! स्वामी को इस प्रकार बुरी अवस्था में पड़ा देख कर भी तुमको दुख नहीं होता? न मालूम तुम्हारा जन्म किस कुल में हुआ था। आज यदि बड़े बाबू और बड़ी बहू रहतीं तो छोटे बाबू इस दुरवस्था में न तड़पते। उनको भी तुमने ही षड्यन्त्र रच कर निकाल बाहर किया। बकस में किसकी कमाई के रुपए पड़े हैं? किसकी कमाई से शरीर पर ये स्वर्णालङ्कार चमक रहे हैं? किसके परिश्रम की कमाई पर पलँग तोड़ रही हो? छिः, कैसा ओछा विचार है। तुम लोगों में दूसरा विवाह भी तो नहीं होता कि इनके बाद दूसरे के पीछे लग जाओगी।

दासी के मुख से इस प्रकार तिरस्कार भरी बातें सुन कर सावित्री चोट खाई हुई सर्पिनी को भाँति फुफकार मारती, विष उगलती हुई बोली—सँभल कर बातें कर। छोटे मुँह बड़ी बात! तुम्हारा यह दुस्साहस! आज मुझसे ज़बान लड़ाने चली हो? यदि तुमको ही उनकी अवस्था पर दया आती है तो तू ही उनके आगे खड़ी क्यों नहीं रहती। मेरा शरीर है या काठ का पुतला है?

दिन-रात उनकी सेवा में लगी रहने से तो सूख कर आधी हो गई, अब क्या किसी समय विश्राम ही न करूँ ? उनके रोगों को मैं कैसे दूर कर दूँ ? यत्न हो ही रहा है, इस पर भी यश नहीं। दिन-रात भाई-भौजाई के लिए आँसू बहा रहे हैं, भाई जैसा भला है सब जानते हैं, चिट्ठी पर चिट्ठी जा रही है, पर स्वप्न में भी झाँकने नहीं आता। जिस पर रात-दिन गुरु-मन्त्र की भाँति भाई के नाम की माला फेरा जाती है।

दासी—छोटी बहू, तुम बिगड़ कर मेरा कुछ न कर सकोगी। यदि तुम्हारे घर का दरवाज़ा बन्द पाऊँगी तो भूल से भी खटखटाने नहीं आऊँगी। जहाँ काम करूँगी वहाँ खाने को मिल जायगा। इस शरीर में इस घर के नमक का बहुत सा भाग है इसी लिए जो कुछ कहती हूँ तुम्हारी भलाई के विचार से ही कहती हूँ, उस पर विचार करो। अपनी छाती पर हाथ रख अपनी आत्मा से तो पूछो कि बड़े बाबू और बड़ी बहू ने भूल कर भी कभी तुम्हारा अहित किया था ? तुम दोनों ने उस साधु को अकारण ही घर से निकाल—निकाल बाहर किया है या नहीं ? छोटे बाबू के पढ़ाने-लिखाने में उन्होंने कभी किसी प्रकार की त्रुटि नहीं होने दी। अपने शरीर पर सङ्कट झेल कर भाई की सहायता करने वाले साधु पुरुष को तुमने छल से निकाल कर पथ का भिखारी बनाया।

हाय! नमालूम छोटे-छोटे बच्चों के साथ वे कहाँ किस अवस्था में दुःख उठाते हुए समय व्यतीत करते होंगे। आज भी उनके कानों में भाई की बीमारी का समाचार पड़े तो वे तत्काल ही दौड़ आवें।

सावित्री—बहुत बोल चुकी, तुमको एकतरफ़ी बातें कहनी आती हैं। क्या तुमको मालूम नहीं है कि जिस समय ये बाहर पढ़ते थे जेठ और जेठानी ने कितना सुख भोग किया। पिता के अर्जित धन पर क्या उनका ही अधिकार था जो सब रुपए गुम कर गए? खेती आदि की बढ़ती हुई आमदनी का तो कुछ पता ही नहीं, उलटे और क़र्ज़ लाद गए हैं उनको किसने निकाला? वे आप ही रुपए-पैसे लेकर इस खोखले घर को छोड़ भागे। बहुत परिश्रम से इस बिगड़ी हुई गृहस्थी को इतनी अवधि के बीच में सुधार कर ठीक किया है, तो अब फिर भाई-भाभी का स्मरण किया जा रहा है। क्या और किसी के भाई-भाभी नहीं हैं? उनके भाई-भाभी की चतुराई देखी गई, मेरे दुर्दिन का उदय होना ही चाहता है, मैं जन्म भर कर्म फोड़ती रहूँगी, तुम मुझको व्यर्थ क्यों कुढ़ाने चली हो। मैंने सदा से तुम पर भरोसा किया था, किन्तु अब देखती हूँ तुम्हारा भी मन बदल गया। इस दुखावस्था में एक तुम्हारा ही भरोसा था, लेकिन तुम भी रूठ बैठी। यह कहते-कहते सावित्री की आँखों में आँसू भर आए।

दासी बोली—मैं रूठने नहीं बैठी हूँ, छोटे बाबू का सिसकना मुझ से नहीं सहा जाता है। स्वामी इस प्रकार तड़प रहा है और तुम यहाँ आकर पड़ी हो, क्या यह उचित है? मुझसे मुँहदेखी बातें नहीं सुनी जायँगी चाहे किसी के विषय को हो, मैं सच्चे पक्ष का समर्थन करूँगी। इन सब बातों का विचार तुमको स्वयं करना चाहिए। ख़ैर, अभी बहुत समय है। अब भी उनके कमरे में जाकर देखो कि वे क्या चाहते हैं। क्यों इस प्रकार रो रहे हैं।

इच्छा न रहने पर भी सावित्री दासी के कहने पर गुलाब बाबू के कमरे में जाकर रूखे स्वर से बोली—क्या हुआ? किस लिए औरतों की भाँति आँसू बहा रहे हो? रात-दिन यही तमाशा करते रहते हो। मैं भी तो मनुष्य हूँ, मुझे भी तो विश्राम की आवश्यकता पड़ती है। चौबीसों घण्टे आप के पीछे मरती ही रहती हूँ, फिर भी आप को मुझ पर विश्वास नहीं, कभी दम मारने की भी छुट्टी नहीं देना चाहते। घर की दासी भी आपके लिए मुझको खोटी-खरी सुनाती है।

स्त्री के मुख से ऐसी तिरस्कार पूर्ण बातें सुन कर गुलाब बाबू शिर उठा कर बोले—पापिष्टे! तुझको किसने यहाँ बुलाया? तेरी ही कृपा से मैं इस प्रकार बे मौत मर रहा हूँ, तूने मेरा सर्वनाश किया। अब क्या बाक़ी रहा है, दो-चार घण्टों के लिए इस शरीर-पिञ्जर में प्राण-

पखेरू तड़फड़ा रहा है, ऐसी अवस्था में भी मुझसे विवाद करने आई है, मैं तुझे देखना नहीं चाहता। अपने अन्तिम समय में उस धर्ममूर्त्ति भाई के चरण-कमल का ध्यान करने दे। अपनी पाप-मूर्त्ति मेरी आँखों के आगे से दूर कर!

स्वामी के मुख से इस प्रकार तिरस्कार भरी बातें सुनकर सावित्री बड़बड़ाती हुई बाहर चली आई। दासी अलग बैठी-बैठी सब सुन रही थी। इसी समय दरवाज़े पर गाड़ी की घरघराहट सुन पड़ी। दासी चौकन्नी हो उधर देखने लगी। देखते ही देखते चार-पाँच व्यक्ति भीतर आ पहुँचे। कई व्यक्तियों को भीतर आते देख दासी चिराग़ लेकर आगे बढ़ी और बोली—आप लोग कौन हैं? उत्तर में सुनाई पड़ा कि मैं दूसरा कोई नहीं हूँ—गुलाब का बड़ा भाई हूँ। ये मेरे बच्चे हैं, स्त्री बाहर गाड़ी में है उसको लिवा लाओ। बीमार रहने के कारण कुछ कमज़ोर है।

दासी इन बातों को सुनते ही हर्ष से बोली—"अच्छे अवसर पर बड़े बाबू आ गए। भाई की अवस्था बड़ी चिन्तनीय हो रही है। ऐसे समय में आपकी बड़ी आवश्यकता थी।" इतना कह दासी ने उन सबों को चौकी पर बिठा दिया और आप बड़ी बहू को लाने चली। सावित्री अपने कमरेसे सब देख-सुन रही थी। उस समय पलँग पर

पड़ी रहना उसने भी उचित नहीं समझा। धीरे-धीरे पलँग से उठी और दासी के साथ हो, जेठानी को लिवाने गई। बड़ी तेज़ी से गाड़ी के निकट पहुँच कर रेवती की माता को गाड़ी से उतार लाई। उनकी अवस्था देख दासी को बड़ी दया आई, एक तो बीमारी ने उसके शरीर को जर्जर बना ही रक्खा था, दूसरे अन्य चिन्ताओं ने उसे और भी घुला दिया था। एक कङ्कालिनी की अवस्था में अपनी जेठानी को देख कर सावित्री को भी दया आई। बड़े आदर से जेठानी को गाड़ी से उतार कर अपने कमरे में लाई। रेवती की माता सावित्री के व्यवहार से सन्तुष्ट हो बोली—छोटे बाबू कहाँ हैं, पहले उनसे भेंट कराओ, उन्हीं को देखने में इस अधमरी अवस्था में यहाँ तक आई हूँ।

सावित्री—आप कुछ देर शान्त हो लें, पीछे उनको देखने जाइए। उनका रोग उतना कठिन नहीं है, केवल बड़े बाबू जी का नाम रटते-रटते वे अधिक अधीर हो गए हैं। उनका मुझ पर कुछ अधिक रोष है! उनका कहना है कि मैं उनकी यथार्थ सेवा नहीं कर सकती हूँ; और बात भी कई अंशों में ठीक है, अकेली क्या कर सकती हूँ। महीने भर से वे बीमार हैं, घर का सब कार्य भी सँभालना पड़ता है, पथ्यापथ्य का भी प्रबन्ध करना पड़ता है, भोजन भी बनाना पड़ता है। इतने दिनों के

कार्य से मैं भी थक गई हूँ। पल पर भी विश्राम नहीं लेने देते हैं, आँखों से ओझल होते ही बुरा-भला कहने लगते हैं। उनकी यह धारणा है कि सबों को मैंने ही घर से निकाल दिया है। इन सब बातों को लेकर वे और भी क्रोध किया करते हैं, इसी से उनका रोग दूर नहीं होता है। अब आप लोगों के आने से सम्भव है, उनका रोग शीघ्र निर्मूल हो जायगा।

रेवती की माता—बहिन, अभी तक तुमको गाढ़े समय का संयोग नहीं हुआ था। ऐसी अवस्था में अवश्य चित्त ऊब जाता है, किन्तु फिर भी धैर्य रखना ही श्रेय है, घबड़ाने से कार्य नहीं चलता है। छोटे बाबू बीमार हैं, ऐसी अवस्था में उनका क्रोध करना स्वाभाविक है, तुम अपने शरीर पर इतना कष्ट क्यों उठाने चली थीं? रुपए गाढ़े दिन में भी नहीं ख़र्चें करतीं, फिर किस समय के लिए जमा कर रक्खे हैं? भगवान् छोटे बाबू की ज़िन्दगी रक्खेंगे तो फिर बहुत रुपए कमा लेंगे। दो-एक नौकर-नौकरानी बढ़ा कर काम चला लेतीं।

सावित्री—आपको तो ऐसा कहना ही चाहिए, इतनी लम्बी अवधि के भीतर घर में क्या हुआ, इसके विषय में आपको क्या मालूम? पड़ोस की रहने वाली युवतियाँ भी ऐसा ही कहती हैं, उन सबों का अनुमान है कि ये वकील हैं, रुपयों से घर भर रक्खा होगा। पहले

मेरा अनुमान भी वैसा ही था, किन्तु आपके देवर की कमाई ने मेरी आँख खोल दी, ईश्वर ने इनको सन्तान ही नहीं दिया, अन्यथा इस वकालत से उनका पेट भी न भर सकते। किसी दिन दो-एक रुपए मिल जाते थे, अन्यथा ख़ाली हाथ वापस आना पड़ता था।

सावित्री की बातों पर उनकी जेठानी मन ही मन उसकी चाल-भरी बातों पर उसको धिक्कारने लगी, पर कुछ बोली नहीं। मार्ग-श्रम से वह बहुत थक गई थी, इसलिए तकिए के सहारे लेट गई। रेवती अपनी छोटी-छोटी बहिनों के साथ चाची सावित्री से मिली। सावित्री ने उनके साथ स्नेहसना व्यवहार किया। हाथ-मुँह धुलाया और भोजन कराया।

उधर सुशील बाबू अपने पुत्र मनोहर के साथ दासी के बताए मार्ग से अपने अनुज गुलाबचन्द के कमरे में गए। कमरे में रेंडी के तेल का एक धुँधला प्रकाश वाला चिराग़ टिमटिमा रहा था, गुलाबचन्द करवटें बदल रहे थे, सहसा कमरे में अधिक प्रकाश देख उन्होंने करवट बदल द्वार की ओर देखा। ज्ञात हुआ कि दो व्यक्ति उनके पलँग की ओर आ रहे हैं। गुलाब बाबू आगन्तुक की ओर उत्सुक दृष्टि से देखने लगे, तब तक सुशील बाबू मनोहर के साथ निकट पहुँच अनुज के मुख की ओर देख कर बोले—प्रिय बन्धु गुलाब! आज तुम्हारा स्वास्थ्य कैसा है?

भाई का कण्ठ-स्वर पहचान कर गुलाब बाबू बलपूर्वक उठने की चेष्टा करने लगे। उनको वैसा करते देख सुशील बाबू उनके पलँग पर बैठ गए और अनुज के शरीर पर हाथ फेरते हुए बोले—नहीं-नहीं, ऐसी चेष्टा न करो, तुम अभी बहुत कमज़ोर हो।

भाई की गोद में सिर रख कर गुलाब बोले—भाई! मुझसे बड़ा भारी अपराध हुआ है। जब तक आप मेरे अपराध को क्षमा नहीं करेंगे, तब तक मैं इसी प्रकार तड़पता रहूँगा। आपका हृदय कोमल और दयावान् है, अतः आप सदा की भाँति इस बालक के अपराध को क्षमा करें। बाल्यावस्था में ही माता-पिता का स्वर्गवास हुआ था। तब से आपकी देख-रेख में पला और पढ़ा, किन्तु अवसर पर इस कृतघ्न ने आपकी आशा पर पानी फेर दिया। उसी पाप के फल-स्वरूप आज नरक-यातना भोग रहा हूँ। वत्स मनोहर का पत्र समय-समय पर आया करता था, किन्तु आपको इस दुर्मुख ने कभी स्मरण नहीं किया।

अनुज के इस वचन से सुशील बाबू का हृदय दया से द्रवीभूत हो गया। वे अनुज को हृदय से लगा कर बोले—गुलाब, तुम व्यर्थ ही इन सब बातों की चिन्ता में पड़े हो, मेरा बन्धु-भाव जैसा पहले था वैसा ही अब भी है और आगे भी रहेगा। मैं यहाँ से सिर्फ़ इसलिए चला गया

था कि कहीं मेरे कारण किसी को कष्ट न हो, मैं तुमको सदा सुखी देखना चाहता था। तुम्हारा मनोहर तुम्हारे आगे खड़ा है।

भाई के मुख से इतनी बातें सुनते ही वे मनोहर की ओर देखने लगे। उधर मनोहर उनका चरण छूकर उनको प्रणाम करने लगा। गुलाब बाबू मनोहर को हृदय से लगाने के लिए व्याकुल होने लगे। मनोहर उनके आगे पलँग पर बैठ गया। गुलाब बाबू ने उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा—बच्चा, कुशल से तो हो?

मनोहर—चचा जी आपके कुशल से सब मङ्गल है। आपके मङ्गल के लिए सब व्याकुल थे।

गुलाब—भाभी कैसी हैं?

मनोहर—वे भी प्रायः बीमार ही रहा करती हैं। बीमारी से ही उनको अधिक स्नेह हो गया है। आपकी बीमारी का नाम सुन कर वे बहुत घबड़ाईं और बीमारी की अवस्था में ही यहाँ तक आई हैं। जिस समय से आपका पत्र मिला, उसी समय से उनकी अवस्था और बिगड़ती गई।

गुलाब—क्यों, वे भी यहाँ तक आई हैं? धन्य है उनकी वात्सल्यता! उनका सदा से मुझ पर वैसा ही स्नेह है जैसा माता का पुत्र पर हुआ करता है। मेरे अत्याचार से उनको असीम दुख उठाना पड़ा, किन्तु तो भी मुझ पर उनकी दया-दृष्टि रही। अब मैं बहुत शीघ्र ही अच्छा हो

आऊँगा। इस प्रकार बोलते हुए वे मनोहर की ओर आनन्द-भरी दृष्टि से देख रहे थे। उस समय उनका मुख देखने से यही मालूम होता था कि सचमुच में उनका रोग निर्मूल हो चला, बहुत देर तक वे भ्रातृ-पुत्र मनोहर से प्रेमपूर्वक बातें करते रहे।

उस रात को रेवती की माता अपने देवर को देखने नहीं जा सकीं। सावित्री ने बड़ी ख़ुशी से सब के लिए भोजन बनाया। भोजनोपरान्त सुशील बाबू अपने अनुज के कमरे में और सब सावित्री के कमरे में सोए। प्रातःकाल नित्य-कर्मों से निवृत्त होकर सुशील बाबू अपने पड़ोसियों से मिलने गए और इधर रेवती की माता अपने देवर गुलाब के कमरे में गईं। गुलाब बाबू तब तक सोए ही थे। वह उनके पायताने बैठ गईं, कुछ समय बाद उनके देवर की आँख खुली। गुलाब बाबू ने पायताने एक दुबली-पतली रुग्णा स्त्री को बैठी देख कर पूछा—कौन है?

उत्तर में आवाज़ आई—मैं तुम्हारी भाभी हूँ, गुलाब बाबू! कहो अब तबीयत कैसी है?

गुलाब धीरे-धीरे तकिए के सहारे उठ बैठे और हाथ बढ़ा कर भाभी का चरण छूकर बोले—भाभी! तुम्हारा कृतघ्न देवर अब किसी प्रकार अच्छा है। इसने तुम्हारे साथ बड़ा अन्याय किया। यदि तुम हृदय से इसको क्षमा

कर दो तो भला ही है, अन्यथा अपने पाप का प्रायश्चित्त इसी अधमरी अवस्था में करता रहेगा। अपने अन्तिम समय में एक बार तुम्हारे पावन-पद के दर्शन की इच्छा थी, ईश्वर की कृपा से वह पूरी हुई।

रेवती की माता—छोटे बाबू! तुमको इस बात के लिए इतना दुःख क्यों होता है? मेरे हृदय में उसका कुछ क्षोभ नहीं है। तुम उन सब बातों की चिन्ता हृदय से हटा दो, सब भला ही है। सावित्री पर भी तुम अधिक क्रोध कर रहे हो। किन्तु वह अनुभव-हीन बालिका सांसारिक बातों को क्या जाने। उस पर इतना क्रोध करना उचित नहीं है। वह अलग ही रो-पीट रही है। उसको अपने किए का दुःख है। अब तुम उसको क्षमा कर दो।

गुलाब—किसका नाम लेने चली हो भाभी! उसने मेरी जैसी मिट्टी पलीद की है, ईश्वर न करे कि शत्रुओं की भी कभी ऐसी दुर्दशा हो। इस एक महीने की बीमारी में ही मुझे उसका पूरा-पूरा परिचय मिला। उसके विषैले चङ्गुल में फँस कर मैंने अपने शिर पर कलङ्क लिया। अब फिर उसी पापिष्टा का नाम लेती हो। वह अपने भाई-भाभी के नाम पर फूल रही है, मैं उसको सदा-सर्वदा के लिए त्यागता हूँ। वह अपने देवता-स्वरूप भाई के घर जाकर रहे। मैं अब आप लोगों की सेवा में अपना शेष जीवन व्यतीत करूँगा। उसने इस अवस्था में भी मुझको जितनी

खरी-खोटी सुनाई है, उसका स्मरण होते ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं। वह स्त्री नहीं, पिशाचिनी है!

रेवती की माता—छोटे बाबू! मेरे आगे तुम भी लड़के ही हो। मैं मानती हूँ कि पढ़-लिख कर बहुत-कुछ ज्ञान बढ़ा चुके हो, किन्तु इस विषय में मैं ही तुमसे अधिक अनुभव रखती हूँ। स्त्रियाँ स्वभाव से ही ओछी प्रकृति की हुआ करती हैं, विद्या तथा शिक्षा से दूर रहने के कारण उनकी बुद्धि विकसित नहीं हो पाती। स्वार्थ की मात्रा उनमें अधिक रहा करती है, फिर भी वह बाल्यावस्था से ही स्वतन्त्र रही, कोई ऊपर से उसकी देख-भाल करने वाली नहीं रही। टोले-मुहल्ले की स्त्रियों के कहने में रहती होगी, इसी से इस प्रकार आगे-पीछे का विचार नहीं करती थी। अब उसको ज्ञान हुआ, अपनी भूल सूझ पड़ी, मेरे आगे रात-भर रोई है, मेरी अवस्था पर उसको दया भी आई है। मैंने उसको समझा-बुझा कर ठीक कर दिया है। भय से तुम्हारे कमरे में नहीं आती है, किन्तु आने की इच्छा रखती है।

गुलाब—भाभी, तुम भूलती हो। अभी तक तुमको उसके कुटिल स्वभाव का पता नहीं मिला है, तुम उसको जितनी सीधी समझती हो वह उतनी सीधी नहीं है, उसका हृदय स्वार्थ और छल का ख़ज़ाना है, झूठ बोलने में भी वह वैसी ही दक्ष है। तुम उसकी बनावटी बातों में मत पड़ो। अन्त में फिर भी वह धोखा देगी।

रेवती की माता—धोखा देगी तो स्वयं धोखा खाएगी, शिर पर हाथ रख कर जन्म भर रोएगी। क्या उसने नहीं देखा कि इस दस वर्ष की अवधि तक बाल-बच्चों के साथ तुम्हारे भाई बाहर-बाहर भटकते रहे, हाथ में एक पैसा भी नहीं था, किन्तु किसी प्रकार कार्य तो चला। ज्यों-त्यों करके पेट की भी पूजा हुई और लड़के के पढ़ाने का प्रबन्ध भी हुआ। पुस्तकें और शुल्क भी भगवान् जुटाते गए, इससे अधिक और कोई क्या करता है। सङ्कट-मय जीवन ही भविष्य में अमर-कीर्त्ति छोड़ जाने की कुञ्जी है। सुखमय जीवन में मनुष्य आलसी और निकम्मा बनता है। सङ्कटावस्था में कष्टों का सामना करने के लिए सब प्रकार से सावधान रहना पड़ता है, इसीलिए उसको बहुत-कुछ कर दिखाने का अवसर मिलता है, यों तो संसार से सभी को एक न एक दिन जाना ही पड़ता है। लोग आँखों देखी बातों पर भी न मालूम क्यों विश्वास नहीं करते हैं और अपने जीवन को छल-प्रपञ्च से अर्थ-संग्रह करने में पापमय बनाते हैं।

गुलाब—अब इसको मैं भी समझने लगा, पहले मेरी आँखें बन्द थीं। सच कहता हूँ, जिसकी बातों में पड़ कर मैंने ऐसा अनर्थ किया था, फिर उसी को बुलाने को कहती हो?

रेवती की माता—छोटे बाबू! तुम अस्वस्थ हो, इस-

लिए अभी तुमसे अधिक कुछ नहीं कहना है; सिर्फ़ इतना ही कहती हूँ कि किसी का कुछ दोष नहीं है, मेरे दुर्दिन ने ही वैसा करा दिया था। सावित्री लेशमात्र भी दोषी नहीं है। यदि किसी का कुछ दोष है भी, तो तुम्हारा ही। क्योंकि उसको उतनी बुद्धि कहाँ? उसके वैसे परिपक्व विचार कहाँ? उस अनुभवहीन बालिका के वचनों को तुमने वेद-वाक्य मान लिया, उसके लिए तुम्हीं दोषी हो। तुमको उचित ,था और है कि अपने निर्मल ज्ञान द्वारा उसकी बुद्धि को परिमार्जित करते, उसके हृदय से अज्ञानता का परदा हटाते, उसका पाणिग्रहण कर ज्ञान से दूर रखने के लिए भी तुम्हीं दोषी हो। अब इस अवस्था में आकर उसको त्यागने का विचार रखते हो, यह कितनी नीचता होगी?

जिस समय रेवती की माता देवर को इस प्रकार समझा रही थीं उस समय सावित्री बाहर खड़ी-खड़ी सब सुन रही थी, वह अपनी जेठानी को अपनी ओर से बहस करते देख, उसी समय कमरे में गई और स्वामी के चरणों पर गिर कर क्षमा के लिए प्रार्थी हुई। गुलाब ने उसे क्षमा कर दिया।

अत्याचार का अन्त

प्रातःकाल एक युवक किसान कन्धे पर लट्ठ लिए अपने खेत की ओर जा रहा था, तीन-चार किसान उसके आगे खड़े हो गए। उनमें से एक ने कहा—भाई! आज के दिन खेत पर न जाओ, कुछ ऐसे ही कार्य आ पड़े हैं जिनमें तुम्हारी सम्मति-विचार की बड़ी आवश्यकता है। कृपा करके उस काम में हमारी मदद कीजिए।

युवक किसान—आज मैं नहीं ठहर सकूँगा। आज के दिन के लिए वह कार्य बन्द रक्खो, आज नहर से पानी पटाने की मेरी बारी है। धान की फ़सल अच्छी लगी है, एक पटावन के लिए सब किया-कराया नष्ट हो रहा है। आज नहर का पानी मुझको मिलेगा। दिन-रात चौबीसों

घण्टों तक मैं खड़ा रह कर पानी पटाऊँगा। आज सुस्ती करने से इतने बड़े परिवार का पालन कैसे होगा? सारे ख़र्च इस खेती-बारी से ही चला करते हैं।

उन किसानों में से एक बोला—तुम व्यर्थ कष्ट उठाने क्यों जा रहे हो, तुम्हारे पास कई नौकर हैं, किसी दो को इस काम पर मुस्तैद कर दो, सब कार्य हो जायगा।

युवक—तुमको अभी इस विषय का अनुभव नहीं है। नौकरी से भी कभी मनोनीत कार्य हो सकता है तिस पर खेती बारी का काम? जो रात दिन स्वयं खड़ा रहता है उसी का काम चाँदी होता है और जो घर में बैठ कर आराम करते हैं उनका बना-बनाया काम भी बिगड़ जाता है। आज घी का घड़ा ही क्यों न गिर जाय, किन्तु मैं घर में नहीं रह सकूँगा। तुम लोगों को दूसरी आमदनी है और मेरा सारा कार्य तो इसी खेती पर निर्भर है।

पहला किसान—आज हाकिम आने वाले हैं, इसीलिए इतना आग्रह करता था। यह कार्य तो किसी प्रकार टल नहीं सकता, क्योंकि अपने अधिकार की बात नहीं है। पानी आज नहीं कल भी पटा सकते हो, उसके लिए उतना हर्ज नहीं है।

युवक—अच्छा कहते हो! तुम लोगों को मेरा हर्ज कैसे मालूम होगा? तुम सबको अपनी-अपनी सूझ रही है। हाकिम आवेंगे तो क्या होगा, साँच को आँच

क्या ? तुम लोग निर्दोष हो तो कोई कुछ नहीं कर सकता; सच्ची बात निकल ही जायगी। यह सब जानते हैं कि तुम लोगों पर झूठा प्रपञ्च रचा गया है। धनी होकर उन्होंने न मालूम क्यों अपने बचने के लिए यह रास्ता सोच निकाला है। फिर मुझको उनके सामने न करो। सामने मैं सच्ची बातें भी नहीं कह सकूँगा, क्योंकि मैं उनका क़र्ज़दार हूँ। वे बड़े ज़ालिम आदमी हैं। थाने का दारोग़ा भी उनका साला ही बन कर आता है। ऐसी अवस्था में मैं क्या कर सकता हूँ, तुम लोग स्वयं विचार सकते हो। दस आदमी मिल कर भले ही अच्छा-बुरा कार्य कर सकते हैं, लेकिन अगुवा को हर तरह से तैयार रहना चाहिए। मैं यदि इसमें अगुवा होता हूँ तो मेरी दुर्गति हो जायगी, सब मुझ पर पड़ जायँगे, मैं ही उनके अत्याचार का शिकार बन जाऊँगा। इससे अच्छा यही होगा कि तुम लोग आगे बढ़ो मैं भी भीतर-भीतर तुम लोगों का अनुगामी बना रहूँगा, लेकिन प्रकट होना नहीं चाहता।

दूसरा किसान—थाने का दारोग़ा इस बार हिन्दू नहीं है, वह उनका साला नहीं हो सकता।

युवक पैसे के सब भक्त हैं। जिनकी पूजा ठिकाने से कर दी जाती है, वही उस पर प्रसन्न हो जाते हैं। यदि नहीं तो यह ख़ून का मामला इतने दिनों तक दबा कैसे

रहा ? पहले के दारोग़ा जी हज़ार दो हज़ार की भेंट पाकर प्रसन्न हो गए। बस, आम की इमली लिख दी गई। मरा बेचारा बूट की ठोकर से, और दारोग़ा जी ने डायरी में लिखा कि उसको मिरगी आती थी। कहो भैया! ग़रीब की जान जान नहीं है ? तुम लोग तो उनके नौकर भी हो और मैं एक छोटा किसान हूँ। यदि कहीं उनको मालूम हो कि तुम लोगों के साथ मैं भी हूँ तो मुझे नहर का पानी एक बूँद भी नहीं लेने देंगे। ऐसी अवस्था में मेरे परिवार के सब आदमी दाना-दाना के लिए मोहताज हो जायँगे। उनके डर से कोई मुझे दरवाज़े पर भी नहीं बैठने देगा। इसी लिए तुम लोगों से प्रार्थना है कि मुझको उसमें न घसीटो।

पहला किसान—पहले वाले दारोग़ा जी नौकरी छोड़ कर चले गए। सुनता हूँ, नए दारोग़ा बड़े भले आदमी हैं। ये ग़रीबों की सुना करते हैं। आशा है, हम लोगों की दशा देख उनको दया आ जाय। तुमको इतना डरना नहीं चाहिए। तुमको ईश्वर ने बनाया है। अतएव हम दोनों की ओर भी देखो।

युवक—यह तुम्हारी भूल है। तुम जिस अवस्था में मुझे समझ रहे हो, यथार्थ में मेरी वह अवस्था नहीं है, मैं अपना हाल आप ही जानता हूँ। ईश्वर न करे मेरे विरोधियों की भी ऐसी बुरी अवस्था हो। बाहर से देखने में

मेरी गृहस्थी भड़कीली लगती है, किन्तु यथार्थ में उसके भीतर कुछ जान नहीं। महादेव बाबू जैसे सच्चे महाजन हैं, यह सबको मालूम ही है—तीन का तेईस जोड़ रक्खा है। प्रति वर्ष जो व्याज के रुपए दिया करता हूँ, उसको अलग खाते पर लिखता जाता है, दस्तावेज़ की पीठ पर वसूल नहीं देता। इससे साफ़ झलकता है कि उसके हृदय में दूसरा भाव है। इसी से मैं उससे दबा रहता हूँ—क्या करूँ, लाचारी है। दूसरा कोई उपाय भी नहीं है कि उससे पिण्ड छुड़ाऊँ। अतएव इन सब बातों को सोच कर तुम लोग मुझको छोड़ दो।

पहला किसान—जब ऐसी बातें हैं तो हम लोग तुमको रोक नहीं सकते। हाँ, इतना कहना आवश्यक समझता हूँ कि चाहे किसी तरह हो, तुम्हारी पहुँच महादेव बाबू तक है। उनसे एकान्त में हम सब की ओर से प्रार्थना करना कि उन ग़रीबों को फँसाकर क्या करोगे।

युवक—इतनी बातें मैं उनका भाव देख कर कह सकूँगा। आशा है, कहने-सुनने पर उनको दया आ जाय।

* * *

बाबू महादेवप्रसाद वासुदेवनगर नामक एक छोटे से गाँव के किसानों के प्रधान किसान थे। इसके अतिरिक्त ग़ल्ला के व्यापारी भी थे। दस-बीस हज़ार रुपए सूद पर भी लगाया करते थे। बारह सौ बीघा ज़मीन अपने हल-

बैलों से आबाद किया करते थे। उनके पुराने गोदाम ग़ल्ले से भरे रहते थे। उन्होंने कभी गोदाम ख़ाली कर ग़ल्ला नहीं बेचा था। अपनी गृहस्थी के लिए एक वर्ष का ग़ल्ला सदा जमा रखते थे। वासुदेवनगर के शेष किसान नाम-मात्र की खेती करते। सबके हृदयों पर महादेव जी का आतङ्क छाया हुआ था, क्योंकि वे थे बड़े कड़े स्वभाव के। वासुदेवनगर के ज़मींदार का भी उन लोगों को उतना भय नहीं रहा करता था, जितना महादेव बाबू का। प्रायः सब के सब उनकी हाँ में हाँ मिलाया करते थे। जो किसान किसी तरह महादेव जी के कहने में नहीं रहता उस पर उनका तीसरा नेत्र निकल आता था, नित्य नए अत्याचारों के चक्कर में फँस कर उसको अपना प्राण तक देना पड़ता था। खेती का समय आने पर अपने ग्रामीण किसानों का हल बेगार में पकड़वा कर महादेव जी अपना स्वार्थ साधते थे। दुखिया ग़रीब किसान रोकर रह जाता, किसी के आगे अपना दुख भी प्रकट नहीं करता। ज़मींदार के अमले भी उनके ही दरवाज़े पर पेट पाला करते थे, इसलिए वहाँ भी उनकी कोई नहीं सुनता था। गाँव के अधिक किसानों को उन्होंने अपने यहाँ दो-चार रुपए महीने पर नौकर रख लिया था, पर भोजन के अतिरिक्त किसी को कुछ नहीं देते थे। नक़द रुपए गिन कर देना ही नहीं जानते थे। सौ-पचास एक बार क़र्ज़ देकर उसी के

व्याज में सबसे काम लिया करते। महादेव जी के गाँव के किसान ग़रीब तो थे ही; साथ ही साथ वे छोटी क़ौम के थे, इसलिए उन पर अत्याचार करना एक मामूली बात थी। एक बार उन्होंने एक किसान के काम पर असन्तुष्ट होकर उसकी छाती में बूट की ठोकरें लगाईं। वह बेचारा उसी मार से संसार से चल बसा। उसकी मृत्यु पर महादेव बाबू तनिक भी नहीं घबड़ाए। लाश उठवा दी और पीछे दारोग़ा को मिला कर डायरी भरवा दी। मामला तो उस समय दब गया, कोई किसान उसके अत्याचारों पर सिर नहीं उठा सका। बेचारे ग़रीब की जान गई और किसी ने कुछ ध्यान नहीं दिया। किन्तु पाप का घड़ा भी भर जाने पर कभी न कभी फूट ही जाता है। वही अवस्था उनकी भी हुई। कुछ दिनों के बाद किसी ने गुमनामी चिट्ठी द्वारा बड़े अधिकारी को उनके अत्याचार की सूचना दे दी। चुपके-चुपके उसकी खोज होने लगी। महादेव बाबू को भी इसकी सूचना किसी तरह मिल गई। उन्होंने भी अपने बचने का उपाय सोचना आरम्भ किया। अपने उन किसान-सेवकों को, जिन पर उनका सन्देह हो रहा था, डराना-धमकाना आरम्भ किया। वे दीन किसान उनके भय से राहु-ग्रसित कलाधर की भाँति काँप रहे थे। इसी भय से उस दिन उस युवक किसान से उन लोगों ने एकान्त में सब बातें कही थीं। और उस युवक

के न लौटने पर वे सब दुखित चित्त से अपने-अपने घर को वापस आए थे। घर पहुँचे ही थे कि महादेव बाबू के यहाँ से उनकी बुलाहट पहुँची। वे सब वहाँ जाने से भय खा रहे थे, किन्तु और दिनों की भाँति उस दिन महादेव बाबू के दूत का रोब-दाब नहीं था, वे अपनी प्रकृति के प्रतिकूल प्रेम से उनसे बातें करते थे। मालिक के भय से वे ग़रीब उसी समय उनकी आज्ञा पालन करने को ड्योढ़ी पर उपस्थित हुए। उनके आने का समाचार सुनकर महादेव बाबू ने उनको अपने एकान्त कमरे में बुला कर इस प्रकार कहना आरम्भ किया—आज किसी समय यहाँ पुलिस-विभाग के बड़े ऑफ़िसर आवेंगे, उस समय तुम लोगों को भय दिखाएँगे, न मालूम किसने तुम लोगों के ऊपर हाकिम को सन्देह दिला दिया है। मेरी कदापि ऐसी इच्छा नहीं कि मेरा कोई पड़ोसी किसी प्रकार की दुःख-बाधा का शिकार हो। मैं भी उनको साफ़ शब्दों में सब बातें समझाऊँगा। यदि वे तुम लोगों से पूछ-ताछ करें तो निर्भय होकर कह देना कि हम लोगों को मालूम है कि उसकी मृत्यु मृगी रोग से हुई है।

एक किसान बोला—मालिक, आप अन्नदाता ठहरे, हम लोग आप ही की आशा रखते हैं, किन्तु उसकी मृत्यु पर बड़ा दुःख होता है। ईश्वर ने आपको बड़ा बनाया है, लेकिन हाय! हम ग़रीबों की ओर आँख उठाने वाला कोई नहीं!

महादेव—क्या मुझसे तुम्हारी कोई बुराई हुई है ?

किसान—मेरी बुराई कैसे नहीं हुई ? मेरा एक भाई आपकी बूट की मार से मर गया, उसके पाँच छोटे-बड़े बच्चे अन्न के लिए तड़प रहे हैं, स्त्री रुग्णावस्था में चार-पाई पर पड़ी है—अब और क्या बुराई होने को बाक़ी रही ?

महादेव—मैंने जान-बूझ कर उसको नहीं मारा है। यदि बूट की ठोकर से मर गया तो उसके लिए मैं दोषी नहीं हूँ, इस पर भी यदि तुम लोग मुझे दोषी ठहराते हो तो मैं उसका प्रायश्चित्त करने को भी तैयार हूँ, तुम्हारे पैरों पर पड़ने के लिए खड़ा हूँ—अब तुम और क्या चाहते हो ?

पहला किसान—हम ग़रीबों पर आपकी दया रहनी चाहिए, इससे अधिक हम सबों को और कुछ न चाहिए। आपसे पैर पकड़वाने से क्या लाभ ? हाँ, उस ग़रीब के बच्चों के दाने-कपड़े का कुछ प्रबन्ध हो जाना चाहिए। मरा हुआ आदमी अब किसी तरह लौट नहीं सकता अतः आप जो कुछ बताएँगे वही हाकिम से कहा जायगा।

महादेव—बस, यही कहना कि बहुत दिनों से 'कपूरी' को मृगी आया करती थी।

उनकी इन बातों पर सब किसान बोल उठे कि ऐसा ही कहा जायगा। तदनन्तर महादेव बाबू ने उन सबों को

अपने-अपने घर जाने की आज्ञा दी। वे सब उसी समय अपने-अपने घर के लिए वापस लौटे। राह में आपस में बातचीत करते जाते थे। एक बोला—भाई, आज महादेव बाबू वे महादेव बाबू नहीं हैं। देखा, कितनी नरमी से बातें करते थे, कपूरी की हत्या कर शान्त होने चले हैं।

दूसरा—आज काम पड़ने पर ऐसा बोलते हैं, उनसे ऐसी आशा नहीं करनी चाहिए कि वे सदा इसी स्वभाव के रहेंगे।

तीसरा—मैं भी ऐसा ही अनुमान करता हूँ। ऐसी अवस्था में हमको क्या करना चाहिए?

पहला—करना क्या चाहिए, हम लोगों के पास रक्खा ही क्या है, ग़रीबों से हो ही क्या सकता है। नरम हो ही गए, पाँव पड़ते ही हैं उनसे और क्या कराना चाहिए। कपूरी के बाल-बच्चों को भोजन-वस्त्र देना स्वीकार ही कर लिया है। बस, और क्या चाहिए?

तीसरा—बस, इतने ही से हो गया? तुम क्या विश्वास करते हो, वे अपनी बातों पर सदा क़ायम रहेंगे?

पहला—कैसे नहीं रहेंगे। हम लोगों के सामने जो कुछ कह चुके हैं उसको बदल देंगे? फिर यदि ऐसा विश्वासघात करेंगे भी तो क्या कोई दूसरी युक्ति काम में नहीं लाई जायगी?

तीसरा—अभी अवसर है, अवसर पर चूक जाने से अच्छा नहीं होगा।

पहला—तुम क्या करना चाहते हो ?

तीसरा—मेरा विचार है कि हाकिम के आने पर सब साफ़-साफ़ कह देना चाहिए। महादेव बाबू अप्रसन्न होकर ही क्या करेंगे ? एक दिन दुनिया से जाना ही होगा, फिर मरने से डरना क्या। यदि उनके ही हाथ मौत होगी तो हो। हाकिम को सच्ची बातें मालूम करा देने से वे हम लोगों की जान-माल की रक्षा भी कर सकते हैं।

दूसरा बोला—मेरी भी यही सम्मति है, एक-एक करके ये हम लोगों की हत्या अवश्य करेंगे।

पहला—मैं भी इस प्रस्ताव को मानता हूँ, किन्तु मुझे इस बात का भय हो रहा है कि ऐसा कहने से भी यदि हाकिम ने कुछ न किया तो बड़ा अनर्थ होगा, लेने के देने पड़ जायँगे। रुपया सबके मुँह को बन्द किए रहता है, सब रुपए के ही भूखे रहते हैं। हमको सोच-विचार कर कार्य करना चाहिए। कार्य बिगड़ जाने पर विचारने से क्या लाभ ?

तीसरा—यदि इस पर भी हाकिम कुछ नहीं सुनेंगे तो न सुनें; हम लोगों का इससे अधिक क्या होगा—इस गाँव को छोड़ कर दूसरे गाँव में जाकर बसेंगे।

पहला किसान—एक ही माघ से जाड़ा नहीं कटता

है। यदि इस बार हम लोगों के साथ विश्वासघात करेंगे तो फिर दूसरी बार देखा जायगा। अब वह समय नहीं रहा।

तीसरा—परन्तु हम लोगों का आपस में पूरा प्रेम भी तो नहीं है, आपस की फूट ही ने तो यह दुर्गति करा छोड़ी है, यदि सब मिले-जुले रहते तो आज उसकी जान ही क्यों जाती? मुझको किसी पर विश्वास नहीं है, क्योंकि जिसमें सामर्थ्य है और कुछ कर भी सकता है, वह भी महादेव के भय से भीगी बिल्ली की भाँति काँपता रहता है।

दूसरा किसान—जाने दो भैया, इन सब विषयों की चर्चा ही व्यर्थ करते हो। जब किसी से कुछ होने ही का नहीं है तो तर्क-वितर्क से क्या लाभ? हाकिम के आने पर जिससे जो कुछ हो सके, कहना। महादेव बाबू माल-दार आदमी हैं। उनको सब पहचानते हैं, वे पैसे के बल से अपना कार्य चोखा कर लेंगे, फिर कोई क्या कर सकता है। इससे यही उचित प्रतीत होता है कि बाबू साहब जैसा कहते हैं वैसा ही कह दो, सागर में रह कर मगर से बैर करना अच्छा नहीं।

तीसरा—ऐसा कभी नहीं हो सकता है, न मालूम तुम लोगों को इस प्रकार भय का भूत क्यों दबा रहा है। इस नवीन युग में इस प्रकार भय खाना उचित नहीं। अत्या-

चारियों के ज़ुल्म से घबराना ठीक नहीं, उनसे लोहा लेना ही वीरता है। उस दिन आपस में इसी प्रकार बातें करके वे लोग घर आए, दूसरे दिन पुलिस-ऑफ़िसर दल-बल के साथ घटना-स्थल पर पहुँचे। महादेव बाबू ने उनके स्वागत में किसी प्रकार की त्रुटि नहीं होने दी। बहुत आदर-सत्कार के साथ उनको अपने यहाँ ठहराया, भोजनादि की बड़ी तैयारियाँ कीं, भोजन की उत्तमोत्तम वस्तु तैयार की गई। पुलिस-ऑफ़िसर बड़े कर्तव्यनिष्ठ थे, उन्होंने उनके उस आडम्बर को स्वीकार नहीं किया, बहुत आग्रह करने पर भी उनके यहाँ भोजन नहीं किया। इससे महादेव बाबू बहुत घबराए, उनको भय हुआ कि सम्भवतः इसका परिणाम बुरा होगा, और हुआ भी वैसा ही। अनेक प्रकार के लोभ पर लोभ दिखाने पर भी काम नहीं हुआ। किसानों ने सच्ची-सच्ची बातें कह दीं। महादेव जी पर ख़ून का मुक़द्दमा चला। पुलिस-ऑफ़िसर ने उनको अपराधी समझ कर चालान किया। मुक़द्दमे ने भयङ्कर रूप धारण किया। बहुत ख़र्च करने पर भी वे बेदाग़ नहीं बचे, अर्थदण्ड के साथ-साथ-बड़े घर में चक्की भी चलानी पड़ी। उसी दिन से उनके स्वभाव में परिवर्तन हुआ, किसानों के कष्ट दूर हुए। वासुदेवनगर में पूरी शान्ति स्थापित हो गई।

विवाह

शा ! सखी आशा ! इतना पुकारती हूँ तोभी तुम्हारा ध्यान भङ्ग नहीं होता है ? अरी पगली ! आज तुमको क्या हो गया है कि इस प्रकार जड़ सी बैठी हो ? किस बात की चिन्ता हो रही है ? कौन सा कष्ट आगे आ उपस्थित हुआ है ? अब अधिक विलम्ब नहीं है। धैर्य रक्खो। धैर्य ही विपत्ति के समय का सच्चा हितू है। समय आ जाने से सब कार्य आप ही आप हो जाया करते हैं। अभी तुम्हारी अवस्था भी इतनी अधिक नहीं हुई है, फिर इस प्रकार दुखी क्यों हो ?”

आशा आँखें उठा कर अपनी सखी की ओर देखती हुई बोली—सखी, तुमने मेरी चिन्ता का कारण नहीं समझा है। मेरी चिन्ता का कुछ और ही कारण है। जो तुम कुछ समझती हो वह सब निर्मूल है। हो सकता है

कि तुमको उसके लिए चिन्ता हो, पर मुझ पर विपत्ति के पहाड़ टूटना चाहते हैं। मेरी सारी आकांक्षाएँ मिट्टी में मिला चाहती हैं।

सखी—ऐसा क्या अनिष्ट होने वाला है? यदि इस अवस्था में मुझसे कुछ सहायता हो सके, तो मैं उसके लिए तैयार हूँ।

आशा—तुमसे आशा की आशा कब भङ्ग हुई है? यद्यपि तुम्हारे हाथ का काम नहीं है, लेकिन यदि तुम चाहो तो कुछ कार्य अवश्य हो सकता है।

सखी—आशा! तुम विश्वास रक्खो, मुझसे जहाँ तक जो कुछ हो सकेगा, कुछ उठा नहीं रक्खूँगी। पहले कुछ कहो भी तो कि कौन सी विपत्ति आने वाली है?

आशा—तुमको मालूम है कि मेरे पूज्य पिता पहले पुलिस सब-इन्सपेक्टर का कार्य करते थे। किसी कारण उनके चित्त में उस विभाग से घृणा उत्पन्न हुई। उन्होंने वहाँ से त्याग-पत्र देकर शिक्षा-विभाग में कार्य करना आरम्भ किया।

सखी—इसी से तो मुझे तुम्हारी जैसी सुशीला से मैत्री हुई। हाँ, इसके बाद क्या हुआ?

आशा—पिता जी के आने पर उन पर घूस लेने का दोष मढ़ा जा रहा है। सुनती हूँ, एक ख़ून के मुक़दमे में अपराधी को अपराधी न बताना, इनका दोष ठहराया

गया है। इस षड्यन्त्र से इनकी यह नौकरी भी जाने का भय है।

सखी—यदि इसमें ये बिलकुल निर्दोष ठहरें तो मुझे क्या पुरस्कार दोगी?

आशा—जो मेरी इतनी भलाई करे उसके लिए सदा सेवा में तैयार रहूँगी, यदि तुम कुछ कर सको तो भला ही है, इसी विचार से तो तुमको सब बातें कह दीं।

सखी—मैं इसी विषय में कुछ-कुछ बातें पहले ही सुन चुकी थी और इसके लिए मैंने यत्न भी कर दिया है, चिन्ता न करो। हाँ, मेरी सेवा के लिए अभी से तैयार रहो।

आशा—ऐं! तुमको किससे ये सब बातें मालूम हुईं? माता जी ने तो नहीं कहा होगा, क्योंकि वह मुझसे भी नहीं कहना चाहती थीं। पिता से बातें करते मैंने सुन लिया था।

सखी—मुझसे तुम्हारे सखा ने कहा है।

आशा—सखी! मेरी इस अवस्था पर भी तो तुमको दया आनी चाहिए। छिः! मैं दुःख से दबती जा रही हूँ और तुम उपहास करने चली हो। तुम्हारा हँसोड़पन किसी समय तुम्हारा पीछा नहीं छोड़ता।

सखी—मैं तुमसे हँसी नहीं करती हूँ, जो कुछ कहती हूँ, वह सब ठीक है। तुमको मालूम होगा, वे पुलिस-

विभाग के ऊँचे पद पर नियुक्त हुए हैं। उनको मैंने तुम्हारा पूर्ण परिचय सुनाया। तुम्हारे रूप-गुण की सच्ची प्रशंसा की, चचा का परिचय दिया, तभी वे बोल उठे कि मैं सब कुछ जानता हूँ। ख़ून वाले मुक़दमे में दूसरी बार वह जाँच करने गए। ख़ूनी का पूरा पता नहीं मिला, पर तो भी अत्याचारी को दण्ड मिला। उनसे ये बातें सुनकर मैंने चचा के विषय में निवेदन किया और वे मुझे वचन देकर गए हैं कि अब किसी तरह की चिन्ता नहीं। मैंने अभी तक तुमसे ये बातें नहीं कही थीं, इसलिए कि इसकी कोई आवश्यकता ही नहीं प्रतीत हुई।

आशा अपनी सखी का हाथ पकड़ती हुई बोली—सच कहती हो? मुझको विश्वास नहीं होता।

सखी—तुमको मेरी बात पर विश्वास नहीं होता?

आशा—तुम्हारा हँसोड़पन चक्कर में डाल देता है।

सखी—नहीं, तुम्हारी भूल है। ऐसे अवसर पर कहीं हँसी हुआ करती है? जो कुछ कहती हूँ, उस पर विश्वास करो और अपने वचन को पालने के लिए तैयार रहो।

आशा अपनी सखी के गले लगती हुई बोली—मैं सेवा के लिए सदा तैयार हूँ। जो कुछ आज्ञा होगी, पालन करूँगी।

सखी—जिसने तुम्हारा कार्य किया है, उसकी सेवा करो।

आशा—मेरी सखी ने मेरा हित-साधन किया है।

सखी—नहीं-नहीं, यह तुम्हारी भूल है। तुम्हारे सखा ने ऐसा किया है।

आशा—मेरा सखा नहीं, मेरी सखी का सखा कह सकती हो।

सखी—ख़ैर, वे ही सही।

आशा—वे मुझसे कैसी सेवा चाहते हैं? उनकी सेवा के लिए मैंने अपने से कहीं अधिक सुन्दर, गुणवती सेविका उनकी सेवा में अर्पण कर दिया है। मुझको सन्देह हो रहा है कि वे उसके रूप-गुण पर मुग्ध होकर उसी की सेवा करने को प्रस्तुत होंगे, क्यों है न?

आशा की हास्यमयी बातों को सुनकर उसकी सखी हँसती हुई बोली—अब तुम भी अच्छी हँसोड़ हो गई हो, किन्तु विश्वास रहे, इसी प्रकार हँसी में उड़ा देने से कार्य नहीं चलेगा—वे तुम पर मुग्ध हो रहे हैं!

आशा—यदि ऐसा ही है तो तुम्हारा गुज़र कहाँ है? तुमको तो तापस-वेष में हो जीवन शेष करना पड़ेगा। यह कह कर वह हँस पड़ी।

सखी—कभी नहीं, मैं बड़ी प्रसन्नता-पूर्वक आशा की आशा पूरी करती रहूँगी।

आशा—लेकिन मैं समझती हूँ कि आशा की आशा पर पानी ही फेरती रहोगी।

सखी—अपनी जैसी सबको मत समझा करो। तुमको मैं अपनी समझती हूँ, अपने प्राण से भी अधिक चाहती हूँ। यदि कभी अवसर मिला तो दिखा दूँगी।

आशा—मुझको भी ऐसी ही आशा रहा करती है। उसका प्रमाण भी मुझको मिल गया। मेरी विनोदमयी बातों पर तुम अप्रसन्न मत हो जाना। मुझमें कई बातों की कमी है, इसलिए मैं तुम्हारी समता कभी नहीं कर सकती हूँ।

सखी—मेरी बातों से यदि तुमको किसी प्रकार का कुछ दुख हुआ तो क्षमा करो। मैंने तुम्हारे मन को दुखाने के लिए ऐसी बातें नहीं कही थीं। सच कहती हूँ, सौगन्ध खाकर कहती हूँ।

आशा ने अपनी सखी का हाथ पकड़ते हुए कहा—परमात्मा करे तुम्हारी ऐसी सखी सबको मिले। मेरे घर चलो, माता जी कई दिनों से तुम्हारी खोज कर रही हैं, मैं तुम्हारे घर प्रायः प्रतिदिन आया करती हूँ, किन्तु तुम सप्ताह में भी तो एक बार झाँक आया करो। माता जी कई दिनों से कह रही हैं कि तू अपनी 'भानु' को इधर क्यों नहीं ले आती?

भानु—अभी वहीं चलने का विचार था। यों तो कई दिनों से तुम्हारे घर चलने का विचार था, किन्तु माता की बीमारी से दम मारने का अवकाश ही नहीं

मिलता था। चाची मुझ पर अप्रसन्न होंगी। चलो, अभी चल कर मैं उनसे क्षमा-याचना कर आती हूँ। यद्यपि हम दोनों के घरों में कुछ अन्तर नहीं है, तब भी मैं नहीं जा सकी, इससे उनको अवश्य दुःख होता होगा। लेकिन जब माता जी की बीमारी का समाचार मालूम हुआ होगा तो उन्होंने बुरा नहीं माना होगा।

आशा—तुम्हारी खोज किया करती थीं।

भानु आशा का हाथ पकड़ती हुई आशा के घर की ओर चल पड़ी। इधर आशा की माता कुछ पहले से ही उसकी मार्ग-प्रतीक्षा कर रही थीं। वह विचार रही थीं कि अब इस प्रकार आशा को बाहर नहीं जाने दूँगी, भानु के घर जा-जाकर वह अपना अधिक समय नित्य नष्ट किया करती है, लड़कियों की स्वतन्त्रता को दबाना ही ठीक है। इतना कह ही रही थीं कि उधर से आशा भानु के साथ उनके आगे उपस्थित हुई। भानु को साथ आई देख कर आशा की माता ने और कुछ न कह कर भानु से कहा—बहुत दिनों पर आई हो बेटी! आओ कुछ समय तुमसे बात करूँ। अकेले जी ऊब जाया करता है। आशा भी पास नहीं रहती। साथ ही कई प्रकार की चिन्ताएँ चित्त को चञ्चल किए रहती हैं।

आशा किसी दूसरे काम में लग गई और भानु उसकी माता के निकट बैठ कर बोली—कई दिनों से इधर

नहीं आ सकी चाची। इसका कारण यह है कि माता जी कई दिनों से ज्वर से पीड़ित थीं।

आशा की माता—अब उनका स्वास्थ्य कैसा है?

भानु—अब अच्छी हैं, कुछ-कुछ कमज़ोरी है।

आशा की माता कुछ समय तक गृह-सम्बन्धी अन्यान्य बातें करती रहीं, तदनन्तर भानु ने कहा—चाची, आशा की अवस्था विवाह के योग्य हो गई, किन्तु अभी तक मास्टर साहब उसके लिए वर नहीं ढूँढ़ते हैं।

आशा की माता ठण्डी साँस छोड़ती हुई बोली—क्या बताऊँ बेटी, अभी मेरे दुर्दिन के दौरे हो रहे हैं, जितनी आशाएँ की थीं, सब पर पानी फिर गया। इतने पर भी परमात्मा को सन्तोष नहीं हुआ है, न मालूम और क्या करने का विचार है। उनका अच्छी से अच्छी नौकरी की ओर से मुँह फेर कर पढ़ौनी पर आरूढ़ होना इसका नमूना समझो। किसी ने ठीक कहा है—"जैसी हो होतव्यता तैसी उपजै बुद्धि, होनहार हृदय बसे बिसरि जाय सब सुद्धि।" इतने पर भी परमात्मा को तृप्ति नहीं हुई। उन पर और भी षड्यन्त्र रचे जा रहे हैं। ऐसी अवस्था में अभागी आशा की आशा कब पूरी हो सकती है? मेरे घर में तो सदा कष्ट उठाती ही रही। देखती हूँ, पति के घर में भी उसको सुख नहीं मिलेगा।

भानु—आप अधीर न हों, भगवान् सबके लिए प्रबन्ध करते हैं। भला ही करेंगे।

आशा की माता—मैं ऐसा ही देखती हूँ, इससे ऐसा कहा। आशा के पिता ने उसके लिए एक लड़का ठीक किया है। यद्यपि लड़का अत्यन्त रूपवान है, पढ़ने-लिखने में अच्छा है, किन्तु जन्म-दरिद्र है। भला उसके घर आशा की आशा कब पूरी होगी। मैंने कई बार उनको समझाकर कहा, किन्तु वे अपने वचन से कब टलने वाले हैं। मेरी प्रार्थना को अनसुनी कर अपने वचन के पालन करने की चेष्टा में हैं, इससे भी पता लगता है कि अभी तक दुर्दिन का दुर्योग पीछा नहीं छोड़ता है, इन्हीं सब बातों को स्मरण कर हृदय दहलने लगता है।

भानु—चाची, तुम स्वयं सब कुछ समझती हो। तुम्हारी यह बालिका तुमको क्या समझाएगी। सिर्फ इतना ही अनुरोध करती है कि इन बातों की चिन्ता न करो, भावी प्रबल है; परमात्मा जो कुछ करते हैं, अच्छा ही करते हैं, इसी पर विश्वास रक्खो। इस प्रकार की निर्मूल आशङ्का से दुखी मत हुआ करो, आशा की आशा पूरी करने वाले वही परम पिता हैं। उनकी लीला बड़ी विचित्र है। लड़का यदि सब तरह से योग्य है, सिर्फ़ धन की कमी है तो चिन्ता नहीं, विवाह होने दो, ईश्वर की कृपा होगी तो धन आप ही पीछे लग जायगा, लक्ष्मी कब किस पर

अनुग्रह करती हैं, यह कौन जानता है ? हो सकता है कि मेरी आशा के पहुँचने पर उन पर लक्ष्मी जी भी प्रसन्न हो जायँ, क्योंकि मैं आशा ही को लक्ष्मी समझती हूँ।

आशा की माता—तुम्हारी बातों को मैं काटती नहीं हूँ, लेकिन जान-बूझ कर आग में कूदने वाला अवश्य जलेगा, इस पर विश्वास करना चाहिए। जान-बूझ कर दरिद्र के घर लड़की सौंपी जाय तो किसका दोष समझा जायगा ? मैं जीवितावस्था में उसके घर आशा का विवाह नहीं करने दूँगी। इससे यही अच्छा होगा कि विष देकर उसकी हत्या कर दी जाय। उस लड़के के पिता की अवस्था ऐसी चिन्तनीय है कि जिसके वर्णन करने से रोंगटे खड़े हो जाते हैं, सुनती हूँ कि उसके रहने के लिए झोपड़ा भी नहीं है। आशा के बैठने को भी जगह नहीं है।

भानु—चाची, आपको कोई दूसरी सन्तान भी नहीं है। अच्छा होगा यदि आप उसको अपने घर रख लेंगी, आपको और किसी वस्तु की कमी नहीं है।

आशा की माता—मैं ऐसा नहीं चाहती, यह इसलिए कि मेरे पीछे मेरे घर वाले लड़की को कष्ट पहुँचावेंगे। इसी से चाहती हूँ कि किसी लक्ष्मीपात्र के सुशील लड़के के हाथ आशा सौंपी जाय।

भानु उनके इन वचनों का उत्तर देना ही चाहती थी कि बाहर से आवाज़ आई—मास्टर साहब ! मास्टर साहब !

कण्ठ-स्वर पहचान कर आशा की माता खिड़की से उस ओर झाँकती हुई बोलीं—भानु, उन्होंने यही लड़का ठीक किया है, ठहरो यहीं बुलाती हूँ! यह कह कर दरवाज़े के निकट आकर बोलीं—भीतर चले आओ मनोहर!

आज्ञा पाते ही मनोहर नीचा सिर किए धीरे-धीरे भीतर आया और गुरु-पत्नी को प्रणाम कर, आज्ञा पा पास की चौकी पर बैठ गया। भानु दूसरे कमरे से आशा के साथ ही टकटकी लगाए उसकी मोहिनी मूर्त्ति की ओर देखने लगी।

आशा की माता ने मनोहर से पूछा—अभी कहाँ से आ रहे हो?

मनोहर—अभी घर से आ रहा हूँ।

आशा की माता—घर पर कुशल-मङ्गल है?

मनोहर—जी, अब सब अच्छे हैं। मैं तुरन्त वापस जाऊँगा। मास्टर साहब से किस समय भेंट होगी?

आशा की माता—अभी कैसे वापस जाते हो, आज यहीं रह जाओ, यह घर भी तो अपना ही है। वे भी थोड़ी देर में आ जायँगे—किसी मित्र से मिलने गए हैं।

मनोहर—अपना घर समझ कर ही आया-जाया करता हूँ, किन्तु अभी यहाँ रह जाने से वहाँ चिन्ता होगी, बाबू जी की आज्ञा से किसी विशेष कार्यवश आया हूँ। यदि उनके आने में कुछ विलम्ब हो तो आप इन रुपयों

को रखिए। उनके आने पर उन्हें दे देने की कृपा कीजिएगा, साथ ही उनके पूज्य चरणों में मेरा प्रणाम कहने का कष्ट कीजिएगा।

आशा की माता—यदि किसी आवश्यक कार्य से तुम अभी यहाँ नहीं ठहर सकते तो जाओ थोड़ी देर के बाद आकर पुनः उनसे मिलना, या नहीं तो कल स्कूल में मिलने पर रुपए देना, मैं नहीं लूँगी।

मनोहर—मैं अब इस स्कूल में नहीं पढ़ूँगा। मेरा घर यहाँ से बहुत दूर है। चचा जी की आज्ञा हुई कि घर में रह कर किसी स्कूल में पढ़ो। उनकी आज्ञा नहीं टाल सकता, इसीलिए आज ही घर जा रहा हूँ।

आशा की माता—ऐं, मैं सुनती थी कि वे तुमको साथ नहीं रहने देते हैं। भाई की कृपा से तुम्हारे पूज्य पिता घर छोड़ यहाँ किसी सेठ के यहाँ नौकरी करते हैं। फिर घर में रह कर तुम कैसे पढ़ोगे?

मनोहर—यों तो चचा की दया मुझ पर सदा से रहती आई है, उन्होंने कई बार आग्रह किया, किन्तु चची की कुदृष्टि रहने के कारण पिता वहाँ जाने के लिए नहीं कहते थे। इस बार उनके आग्रह को पिता जी भी नहीं टाल सके, इसी लिए अब यहाँ रहने का विचार नहीं है। सम्भवतः पिता जी भी अब यहाँ की नौकरी नहीं करेंगे।

"तुम्हारे चचा जी का क्या नाम है, और वे क्या करते हैं ?"

"उनका नाम गुलाबचन्द है, वे वकालत करते हैं।"

"तुम्हारे घर की अवस्था कैसी है ?"

"मेरे पिता ने सब चीज़ें चचा जी को ही सौंप दी हैं। इस छोटी सी नौकरी के अतिरिक्त मेरे घर का कोई दूसरा अवलम्ब नहीं है।"

"आज तुमको यहाँ रहना पड़ेगा। मैं भी तुम्हारी माता के समान ही हूँ। आशा और विश्वास है कि मेरी बातें भी नहीं टालोगे।"

मनोहर कुछ समय तक मौन रहने के बाद बोला—यदि आपकी ऐसी ही आज्ञा है तो मैं टाल नहीं सकूँगा।

मनोहर के मुख से इतनी बातें सुनकर आशा की माता उसके लिए जल-पान इत्यादि का प्रबन्ध करने गई। आशा भानु के साथ अपने कमरे में उनकी बातें सुन रही थी। जब से उसने मनोहर की मोहिनी मूर्त्ति की ओर दृष्टि डाली थी, तभी से वह उसके रूप पर मुग्ध हो रही थी। मनोहर की मधुर बोली उसको और भी मुग्ध कर रही थी, भानु आशा को ध्यानावस्थित देख बोली—सखी, सचमुच मनोहर की मनोहर मूर्त्ति दुखी चित्त को भी सुखी करने वाली है। अहा! कैसा अनोखा रूप है! कैसी रूप-माधुरी है। ईश्वर ने यथार्थ ही इसको तुम्हारे ही

अनुकूल बनाया है। युगल जोड़ी सब प्रकार से अच्छी होगी।

आशा—तुम भी क्या उन पर मोहित हो गई हो?

भानु—मैं तुम्हारे लिए उनको स्वीकारती हूँ, तुम्हें भी स्वीकार कर लेना चाहिए। न मालूम चाची क्यों इस प्रस्ताव को अस्वीकार करती हैं।

आशा सखी के वचनों के उत्तर में चुप रही। यों तो वह चुप थी, किन्तु भीतर ही भीतर ईश्वर से उस वर के लिए प्रार्थना करती थी। हृदय-मन्दिर में उसकी पावन मूर्त्ति को स्थापन कर चुकी थी। आशा की माता मनोहर के लिए जल-पान का प्रबन्ध करने लगी। मनोहर जल-पात्र लेकर बाहर की ओर गया। उसके बाहर जाते ही भानु कमरे से निकल कर बोली—चाची, लड़का बड़ा भव्य है, गुणवान और होनहार प्रतीत होता है। यदि धन की कमी है तो हर्ज नहीं, तोते की टेढ़ी चोंच भी भली प्रतीत होती है। मेरा अनुमान है कि पीछे इसको धन की कमी नहीं रहेगी। मेरी भी सम्मति है कि इसके हाथों में अपनी आशा को सौंप दीजिए।

"जब तुम लोगों का ऐसा ही आग्रह है तो मैं भी स्वीकार कर लूँगी। लड़का रूप-गुण में किसी से कम नहीं है। सिर्फ़ ×××"

"उसकी भावना नहीं करनी चाहिए!"

"देखा जायगा।"

तदनन्तर भानु अपने घर को वापस लौट गई। आशा की इच्छा भी उसके साथ चलने की थी, किन्तु माता ने उसको रोक लिया। कुछ देर बाद मनोहर जलाशय की ओर से वापस आया, तब तक कैलाश बाबू भी बाहर से आ गए। मनोहर को आया देख उनको बड़ी प्रसन्नता हुई। समय पाकर मनोहर ने अपनी सारी बातें उनसे कह सुनाईं और उधार लिए हुए रुपए उनके सम्मुख रख दिए। कैलाश बाबू ने रुपए नहीं लिए और न उसको अपने स्कूल से जाने देने को राज़ी हुए। आग्रह कर मनोहर को कई दिन अपने घर रोक लिया। मनोहर कई दिनों तक कैलाश बाबू के घर रह गया। उनके घर वाले उसको अपना ही समझ अपना-सा बर्ताव करने लगे। आशा को मनोहर के सामने आने-जाने का अवसर मिला। कभी-कभी आँखें चार होने पर दो-दो बातें हो जाने लगीं। एक दूसरे को हृदय से चाहने लगे। मनोहर के शील-स्वभाव पर आशा के पिता तो पहले ही से मुग्ध थे। इस बार आशा और उसकी माता भी उस पर मुग्ध हो गईं। आशा की माता ने भी सङ्कल्प कर लिया कि आशा का पाणिग्रहण इसी से कराऊँगी। अपने माता-पिता का एक ही पुत्र है, दोनों घर का दुलारा होगा। ईश्वर चाहेगा तो इसी से आशा की आशा पूरी होगी।

उस घर में कई दिन रहने के बाद मनोहर अपने घर जाने के लिए बड़ा आग्रह करने लगा। उसके आग्रह की अधिकता पर कैलाश बाबू ने एक पत्र उसके आगे रख कर कहा—तुम्हारे चचा और पिता से आज्ञापत्र मँगवा लिया है। परीक्षा का समय निकट आ गया। इस घर को अपना घर समझ, निस्सङ्कोच भाव से रह कर पढ़ा-लिखा करो।

पत्र उठाकर मनोहर ने पढ़ना आरम्भ किया। पढ़ लेने पर बोला—आप इस अभागे पर इतनी कृपा करते हैं। इस ऋण को मैं जन्म-भर में भी नहीं चुका सकूँगा। जब आपकी इतनी कृपा है तो मैं आज्ञा नहीं टाल सकता।

उस दिन से मनोहर कैलाश बाबू के निकट रह कर पढ़ने लगा। भोजनादि का प्रबन्ध उसको नहीं करना पड़ता था। स्वयं कैलाश बाबू ही उसके लिए सब प्रबन्ध करते थे। अस्तु, मनोहर उनके साथ बड़े प्रेम से रहने लगा।

उधर गुलाब बाबू भी पूर्ण स्वस्थ हो गए। उनकी धर्मपत्नी सावित्री के स्वभाव में भी पहले से बहुत-कुछ परिवर्तन हो गया। कुछ समय बाद गुलाब बाबू ने अपने भाई की सभी कन्याओं का विवाह क्रमशः कराया। उसमें जितना ख़र्च हुआ, सब उन्होंने अपने पास से किया। यद्यपि सावित्री इन ख़र्चों से हाथ-पैर खींचती थी, तो भी

गुलाब बाबू ने उसके कहने पर कभी ध्यान नहीं दिया। मनोहर बहिन के विवाह में दो-एक दिन के लिए घर आया। क्योंकि परीक्षा का समय निकट आ जाने से वह अधिक वहाँ नहीं ठहर सकता था। मनोहर के माता-पिता अपनी सभी कन्याओं का विवाह हो जाने से अब सदा प्रसन्न रहा करते थे।

आशा और मनोहर
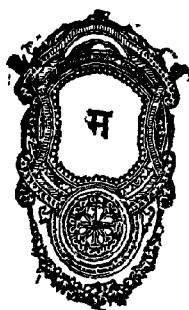
म नोहर परीक्षा में प्रथम निकला। कैलाश बाबू की पुत्री आशा के साथ उसका विवाह भी हो गया। कैलाश बाबू उसको अपने पास से ख़र्च देकर कॉलिज में पढ़ाने लगे। एक तरह से दुख के दिन दूर होते से दिखाई पड़े। किन्तु यह अवस्था बहुत दिनों तक नहीं रह पाई। फ़सली बीमारी से मनोहर के माता-पिता स्वर्गवासी हो गए। इससे मनोहर पर बड़ी विपत्ति आ पड़ी। बेचारा अधीर हो गया। पढ़ना छोड़ने की इच्छा करने लगा, किन्तु चचा गुलाबचन्द के अधिक आग्रह से नहीं छोड़ा। गुलाबचन्द जी मनोहर को पुत्र

के समान प्यार की दृष्टि से देखा करते थे। सावित्री का भी उस पर कम स्नेह नहीं था। लेकिन यह अवस्था भी अधिक दिनों तक नहीं रही। ईश्वर ने सावित्री की गोद भी पुत्र-रत्न से पूर्ण की। जिस दिन से सावित्री के पुत्र हुआ, उसी दिन से मनोहर की ओर से उन लोगों का स्नेह-सूत्र ढीला होने लगा। पहले की भाँति प्रेम-भाव न देख मनोहर की इच्छा भी चचा के घर जाने की नहीं रही। एक वार अवसर पाकर आशा ने मनोहर से कहा—आप पुस्तकों के रटने में जैसा ध्यान लगाते हैं वैसा स्वास्थ्य की ओर नहीं। जब से आपके पिता स्वर्गीय हो गए तब से आप बहुत दुबले हो गए हैं। मालूम पड़ता है, मानसिक चिन्ता अधिक किया करते हैं। पत्नी के प्रश्न के उत्तर में मनोहर ने कहा—प्रिये, तुम्हारा अनुमान ठीक है। माता-पिता के लिए मुझको अवश्य अधिक दुख है। यों तो सबके माता-पिता सन्तान के लिए कष्ट उठाया करते हैं, किन्तु मेरे माता-पिता ने मेरे लिए जितना कष्ट उठाया वह अकथनीय है। रात-दिन भूखे रहे, शरीर पर वस्त्र नहीं, रहने का घर नहीं, तब भी मेरे लिए स्कूल की फ़ीस और पुस्तकें जुटाईं। उन्होंने मेरे लिए सब कुछ किया, किन्तु मैं उनके लिए कुछ नहीं कर सका। जो पुत्र पिता-माता के अन्त समय में भी काम नहीं आया, संसार में उसका जन्म ही व्यर्थ हुआ। इस

शरीर के रोम-रोम में माता-पिता के उपकार भरे हुए हैं, किन्तु हाय ! इस अभागे से उनकी कुछ भी सेवा नहीं हो सकी, इसका दुःख अवश्य है। जी चाहता है कि कहाँ दौड़ जाऊँ कि उनके पवित्र पद-पङ्कज के दर्शन पाऊँ। उनकी सारी आशाओं पर मैं पानी फेरता ही रहा, उनके बिना मेरे लिए संसार सूना हो गया।

आशा—प्राणेश ! अब अधिक चिन्ता करने से कुछ लाभ नहीं है। अतएव अब उस ओर से चित्त-वृत्ति को मोड़ कर ऐसे कार्य में लगाइए जिससे वे स्वर्ग में सुखी हों। मुझ अभागिनी को उनके चरण-कमल के दर्शन का भी सौभाग्य नहीं हुआ।

मनोहर—अधिक चेष्टा करने पर भी चित्त से चिन्ता दूर नहीं होती।

आशा—प्राणेश ! मन बहलाने से ही बहलता है, पढ़ने-लिखने की ओर ध्यान दीजिए।

मनोहर—जो कुछ हो, अब मेरी इच्छा ही नहीं होती कि कुछ दिनों तक और पढ़ूँ। यदि तुम्हारी सम्मति हो तो पढ़ना छोड़ दूँ ?

आशा—पढ़ना छोड़ कर आप क्या करना चाहते हैं ?

मनोहर—सेवा।

आशा—किसकी ?

मनोहर—जननी जन्मभूमि की।

आशा—मेरे पिता के भी आपके अतिरिक्त और कोई सन्तान नहीं है। उनकी आशा भी आपसे ही पूरी होगी।

मनोहर—उनकी सेवा में भी रहूँगा।

आशा—क्या आप चाहते हैं कि वृद्धावस्था में भी वे सङ्कट झेलते ही रहें, ग़ुलामी की बेड़ी पैरों में बाँधे ही रक्खें?

मनोहर—कभी नहीं, मैं चाहता हूँ कि आज ही वे अपनी नौकरी छोड़ कर स्वतन्त्रता-पूर्वक जीवन यापन करें।

आशा—स्वतन्त्र जीवन यापन करने के साधन?

मनोहर—साधनों की कमी नहीं है, अनेक साधन हैं। हाँ, सच्चे साधक की कमी है। साधक मिल जाने से स्वयं साधना उसके पास आ जायगी। तुम्हारा क्या विचार है?

आशा—देश-सेवा बुरा कार्य नहीं है, किन्तु × × ×

मनोहर—तुम किन्तु-परन्तु के पचड़े में व्यर्थ ही पड़ी रहती हो। शुभ-कार्य में अधिक विलम्ब की आवश्यकता नहीं है, 'शुभस्य शीघ्रम्' के अनुसार इस कार्यक्षेत्र में कूदो। तुम्हारे पिता जी का हृदय बड़ा पवित्र है, उनके हृदय में देश-प्रेम की लहरें लहराया करती हैं।

आशा—जो कुछ हो, लेकिन अभी आपके लिए वह

कार्य नहीं है, सब कार्यों के लिए समय हुआ करता है। एक समय आएगा तब आप उस क्षेत्र में अग्रसर होने के योग्य होंगे, अभी आपको उनकी आशा पर पानी नहीं फेरना चाहिए।

मनोहर—क्या आशा की आशा पर भी पानी फिर जायगा ?

आशा—आप ही विचारिए ! मैं समझती हूँ कि आप जिस क्षेत्र में बढ़ने की चेष्टा कर रहे हैं, वह तपस्वियों का पवित्र तप-क्षेत्र है। उस क्षेत्र में सोच-समझ कर पैर रखना चाहिए। इस पवित्र कार्य में योग देना दूसरी बात है और बलिदान की वेदी पर चढ़ना बहुत कठिन कार्य है। बिना समझे-बूझे बहुत से मनुष्य इस क्षेत्र में कूद पड़े और अल्प समय में ही सङ्कट का सामना न कर सकने पर उन्हें हताश होना पड़ा। इससे लाभ के बदले भारी हानि उठानी पड़ी।

मनोहर—अभी मेरा विचार ऐसा नहीं है कि एक-दम उसी के पीछे दौड़ पड़ूँ, पर इतना अवश्य चाहता हूँ कि किसी प्रकार देश-सेवा करूँ।

आशा—पढ़ना छोड़ने से ही कोई देश का कार्य नहीं कर सकता है। उसके लिए सच्चा व्यवहार, शुद्ध हृदय और पवित्र प्रेम होना चाहिए।

मनोहर—और सच्ची गृहिणी ?

आशा—वह भी ठीक है, आप में सब गुण हैं, किन्तु सच्ची गृहिणी की ही कमी है। वहिन भानु-सी गृहिणी मिल जाती तो गुणों की त्रिवेणी वह जाती।

मनोहर—तुम्हारी भानु तुमको ही भली लगती है, मेरे विचार से उसमें दुर्गुणों की मात्रा वहुत अधिक है।

आशा—ऐं! यह क्या? आपने उसमें क्या दुर्गुण पाया? विना विचारे ऐसा कहना उचित नहीं है। उसकी जैसी भली सखी मुझको कोई दूसरी नहीं मिली। धनी-मानी की लड़की होकर भी उसमें नाम-मात्र को भी अभिमान नहीं पाया जाता है। उससे मेरी कितनी भलाई हुई, इसको मैं ही जानती हूँ। आप उस पर यह दोष न लगावें।

मनोहर—इसके लिए तुम दुखी क्यों हो जाती हो? सचमुच ही भानु बड़ी भली प्रकृति की है।

मनोहर की वातों पर आशा मुस्कराती हुई वोली—आपकी किस वात पर विश्वास किया जाय?

मनोहर—पहले मैंने हँसी से कुछ कह दिया था। मैं जानना चाहता था कि तुम्हारा सच्चा भाव उसके प्रति कैसा है?

आशा—यों तो स्त्रियाँ स्वार्थ की पुतली समझी जाती हैं, किन्तु भानु में स्वार्थ की मात्रा ज़रा भी नहीं है। कई बार अकारण ही उसने मेरे घर वालों को सहायता

पहुँचाई। आपके स्वास्थ्य के लिए उसे बड़ी चिन्ता हो रही है, उसने कई बार पत्र-द्वारा सूचित किया कि अङ्गरेज़ी शिक्षा-प्रणाली का ढङ्ग ही ऐसा बिगड़ता जा रहा है कि विद्यार्थियों का स्वास्थ्य बिगड़ना स्वाभाविक-सा हो गया है। लड़के स्वास्थ्य को बलिदान कर बी० ए० और एम० ए० की डिगरी लेते हैं, जो बिलकुल निरर्थक सी हो जाती है।

मनोहर—उनका लिखना बहुत ठीक है। इन सब विषयों का उनको अच्छा अनुभव है।

आशा—भानु अच्छी विदुषी और अनुभवशीला है। सबसे भारी गुण उसमें यह है कि परोपकार की मात्रा उसमें बहुत अधिक है।

मनोहर—ईश्वर सबके घर में ऐसी कन्या-रत्न दें।

आशा—आज उसका एक पत्र आया है। उसमें उसने लिखा है कि मैं बहुत शीघ्र तुमसे मिलने आऊँगी। इस बार उसके आने पर आप उससे मिलेंगे। साक्षात् होने पर आप उससे बातें कीजिएगा, तब आपको उसका पता लगेगा। आप से वह मिलना चाहती थी, किन्तु ऐसा कुछ संयोग हुआ कि आपके आने के दो-तीन दिन के बाद ही वह चली गई। उसने कई बार मुझसे आपसे मिलने की युक्ति पूछी थी।

मनोहर—पराई बहू-बेटियों से मिलना मैं ठीक

नहीं समझता हूँ—संसार में कलङ्क बात की बात में लग जाता है।

आशा—आपका कहना बहुत ठीक है, किन्तु इसी भय से अपने अपेक्षितों से मिलना-जुलना कैसे छूट सकता है। फिर भानु को लेकर ऐसी बातें कोई कह भी नहीं सकता है, उसके आदर्श-चरित्र का नारी-समाज को अभिमान है।

मनोहर—मैं भी उसको वैसा ही समझता हूँ।

आशा—इस बार मिलने पर सब पता लग जायगा।

आशा का ह्रास

लाश बाबू! आप मेरी बातों पर विश्वास रक्खें। मनोहर को अभी मानसिक परिश्रम न करने दें, अन्यथा भारी हानि होगी। मुझको भी इसका दुख है कि परीक्षा का समय निकट आ गया।”

कैलाश बाबू—डॉक्टर साहब! मनोहर की प्राण-रक्षा हो जायगी तो वह पीछे परीक्षा पास कर लेगा। परीक्षा के लिए फ़िक्र नहीं है।

डॉक्टर—आपको चाहे न हो, लेकिन उसको इसकी चिन्ता है, वह रुग्णावस्था में भी इसके लिए रोता है; अभी मैंने उसके सिरहाने से पुस्तकें निकाली हैं, मेरा अनुमान है कि वह एकान्त में पुस्तकें अवश्य पढ़ा करता है।

कैलाश—अभी उसको समझा देता हूँ, फिर कभी ऐसा नहीं करेगा, पुस्तकें लेकर आलमारी में बन्द किए देता हूँ।

डॉक्टर—उसने चिन्ता करके ही रोग को असाध्य कर दिया है, अब पढ़ने-लिखने की ओर से उसको मुख मोड़ लेना पड़ेगा। यद्यपि उसकी होनहारता पर सबको बहुत आशा थी, पर इस बीमारी ने उस आशा पर पानी फेर दिया, अब उससे किसी तरह की आशा नहीं की जा सकती है। उसने पढ़ने में जितना अधिक ध्यान दिया है, स्वास्थ्य को सत्यानाश करने में भी उतनी ही असावधानी की है। जो लड़के पढ़ने के समय स्वास्थ्य पर ध्यान नहीं देते, उनको जीवन भर रोना पड़ता है, उनकी आशा कभी पूरी नहीं होती। स्वास्थ्यप्रद जीवन ही जीवन का सच्चा सुख लाभ कराता है। स्वास्थ्य ठीक न रहने पर सच्चा सुख नहीं मिल सकता, चाहे उसके पास सुख के सब साधन क्यों न रहें। जिस समय डॉक्टर साहब कैलाश बाबू से इस प्रकार बातें कर रहे थे, उस समय पास के कमरे से आशा ध्यानपूर्वक सब बातें सुन रही थी। डॉक्टर साहब की बातों से आशा की आशा भङ्ग हो गई। उसको विश्वास हो गया कि स्वामी का रोग असाध्य होता जा रहा है, पुस्तकों से उनको इतना प्रेम हो गया है कि स्वप्न में भी नहीं भूलते हैं, आँखें खुली रहने पर

भी परीक्षा का नाम लिया करते हैं, पिता-माता के स्वर्गीय हो जाने की चिन्ता थी ही, अब परीक्षा की चिन्ता बेतरह सता रही है। इसी तरह कमरे में बैठी-बैठी चिन्ता करती हुई आशा आँसू बहा रही थी। डॉक्टर साहब कैलाश बाबू को सब बातें समझा कर बाहर गए। आशा की माता मनोहर के निकट जा बैठी। उसी समय आशा की सखी भानु उसे ढूँढ़ती हुई वहाँ आ पहुँची। उसको आती देख आशा आँसू पोछने लगी। भानु उसको रोती देख, उसके हाथ पकड़ कर बोली—आशा! तुम इस प्रकार रोती क्यों हो?

सखी भानु की बातें सुन कर आशा और भी अधीर हो गई, उसके धैर्य के बाँध टूट गए, वह सिसक-सिसक कर रोने लगी। उसको इस प्रकार रोती देख भानु उसे हृदय लगा कर बोली—मैं समझ रही थी कि तुम समझदार हो, किन्तु तुममें धैर्य का नाम भी नहीं है। छिः! विपत्ति के समय इस प्रकार अधीर स्त्री कब लाभ उठा सकी है? जो कुछ होनहार है वह होता ही है, विधि के विधान में कोई बाधा डाल ही नहीं सकता, फिर धैर्य-हीन होने से क्या लाभ? जब तुम इस प्रकार अधीर हो जाओगी तो तुम्हारे वृद्ध पिता-माता की क्या दशा होगी? उनका तो जीना ही मुश्किल हो जायगा। मनोहर बाबू दस दिन से ज्वर से पीड़ित हैं। इसलिए इस प्रकार

घबड़ा जाना बुद्धिमत्ता नहीं है, आज नहीं कल अच्छे हो जायँगे।

आशा आँसू पोंछती हुई बोली—बहिन, आज डॉक्टर साहब पिता जी से जो कुछ कह गए हैं, उससे मुझे विश्वास हो गया कि इनका रोग असाध्य है, पढ़ना भी गया और न मालूम क्या होने को है। इन्हीं सब भारी विपत्तियों को स्मरण कर कलेजा फटा जाता है।

भानु—यह तुम्हारी भूल है, तुम व्यर्थ ही ऐसी विपत्ति की आशङ्का करके अधीर होती हो, परमात्मा करेंगे तो वे अच्छे हो जायँगे। चलो चल कर देखूँ वे कैसे हैं?

आशा—अभी माता जी उनके कमरे में हैं।

भानु—हम सबको आती देख वे वहाँ से स्वयं ही हट जायँगी।

भानु के आग्रह करने पर आशा उसके साथ आगे बढ़ी, आशा की माता उन सबों को आती देख कमरे से बाहर चली आईं। भानु के साथ आशा ने मनोहर बाबू के कमरे में प्रवेश किया। उन दोनों को आई देख मनोहर करवटें बदल उनकी ओर देखने लगे। उस समय उनकी आँखों के कोने में आँसू भर आया था, भानु उन्हें बिलखते देख रूमाल से उनकी आँखें पोंछती हुई बोली—मनोहर बाबू! आपको मैं क्या समझाऊँ, आप स्वयं सज्ञान हैं,

बड़ी-बड़ी पुस्तकें पढ़ चुके हैं, फिर इस साधारण ज्वरा-वस्था में इस प्रकार अधीर होकर घर भर को क्यों रुलाते हैं? आपको धैर्य रखना चाहिए।

मनोहर—अब मैं परीक्षा नहीं दे सकूँगा, वर्षों का परिश्रम व्यर्थ हुआ, इसी की भारी चिन्ता है।

भानु—आपने चिन्ता को अपनी सहचरी बना लिया है, इसी से सोने का शरीर राख का ढेर बनाना चाहते हैं। परीक्षा के लिए इस प्रकार की अधीरता ही क्या, इस वर्ष न सही अगले वर्ष ही परीक्षा हो जायगी। ऐसा कुछ कारण भी नहीं दिखाई पड़ता कि इस वर्ष आप परीक्षा न दे सकें। मुझको आज ही मालूम हुआ है कि परीक्षा की अवधि बढ़ा दी गई है। प्रश्न-पत्र चोरी होने से ही ऐसी गड़बड़ी हुई है।

मनोहर—आपने किससे सुना?

भानु—और किससे सुनूँगी, अभी उनकी एक चिट्ठी आई है। उसी में उन्होंने लिखा है।

मनोहर—सच्ची बात है?

भानु—क्या मैं आपसे झूठ कहती हूँ?

मनोहर—परीक्षा का समय कितना बढ़ गया है?

भानु—पूरे एक महीने के लिए बढ़ गया है।

मनोहर के मुख पर से चिन्ता की छाया हट गई, वह हँसते हुए बोले—यदि ऐसा हो तो मेरे लिए अत्यन्त

अच्छा हो, ईश्वर की कृपा ही समझिए। सच कहिए; आपको सौगन्ध है।

भानु—आप विश्वास रक्खें मैं जो कुछ कह रही हूँ, अक्षरशः सत्य है, उस पर अविश्वास नहीं कीजिए। मैं भी समझती हूँ कि ईश्वर की विशेष कृपा से ही ऐसा हुआ है, इतनी अवधि के अभ्यन्तर आप अवश्य परीक्षा में बैठने योग्य हो जायँगे।

मनोहर—अब मुझको विश्वास हो रहा है कि मैं अवश्य परीक्षा में सम्मिलित हो सकूँगा।

भानु—आपको विशेष चिन्ता हो रही है, इसी से आप ऐसे हो गए हैं। चिन्ता से बढ़ कर शरीर के लिए दूसरा रोग नहीं है। गिरधर कविराय ने ठीक ही कहा है:—

चिन्ता ज्वाल शरीर वन, दावा लगि-लगि जाय।
प्रकट धुँआ दीखै नहीं, उर अन्तर धुँधुँआय॥
उर अन्तर धुँधुँआय जरे ज्यों काँच की भट्टी।
लोहु-माँस जरि गयो रह्यो हाड़न की टट्टी॥

इन सब बातों को जानते हुए भी आप चिन्ता की चिता में जला करते हैं। छिः! क्या आपको भी समझाना पड़ेगा?

अवसर समझ कर आशा भी धीरे-धीरे बोली—मैंने भी इनसे कई बार कहा कि बीती बातों की चिन्ता छोड़ दीजिए, उससे कोई लाभ नहीं है; किन्तु मेरी बातें अनसुनी

कर दिया करते हैं। तुम भी बारम्बार मुझको उपालम्भ दिया करती थीं।

भानु—बहिन, तुमको झूठ-मूठ उपालम्भ नहीं दिया था, तुम तो अब भी उपालम्भ के योग्य हो। पुरुषों के स्वास्थ्य का ध्यान स्त्रियों को भी रखना चाहिए। जो सच्ची गृह-लक्ष्मी हैं वह अपने पति को कभी किसी प्रकार की चिन्ता का अवसर ही नहीं आने देतीं। माता-पिता के घर में रह कर तुम थोड़ी लापरवाह हो गई हो, लेकिन यह तुम्हारी भूल है; स्वामी की सेवा में सङ्कोच करना या लापरवाही दिखाना नासमझी है। जो ऐसा करती हैं उनसे बढ़ कर अभागिनी दूसरी नहीं हैं। यदि स्वामी की सेवा करने वाली युवती पर कोई हँसे, तब भी उसको उसकी कुछ परवाह नहीं करनी चाहिए। अपना कर्तव्य पालन करना ही मनुष्य का प्रधान धर्म है, उसको हँसी-अपमान का विचार नहीं करना चाहिए। तुमको भली भाँति मालूम है कि मेरे पीछे मेरी हँसी उड़ाने वाली सखियाँ भी मेरे सामने कुछ बोलने का साहस नहीं कर सकतीं।

आशा—तुम्हारी बराबरी मैं नहीं कर सकती।

भानु—क्यों?

आशा—उतनी बुद्धि नहीं, उतना अनुभव नहीं!

आशा की बातों से भानु मुस्कराती हुई बोली—वाह! खूब कहा! बड़ी-बड़ी पुस्तकों को पढ़ लिया, गृह-

कार्यों में निपुण हो गई, फिर मुझसे बुद्धि कम कैसे रही? क्या अधिक पढ़ने-लिखने से स्वामी की सेवा करने में अधिक सङ्कोच हुआ करता है? सो भी तो अङ्गरेज़ी ढङ्ग से शिक्षा नहीं मिली है, मास्टर साहब आर्य-देवियों की शिक्षा-दीक्षा की भाँति तुमको राह पर लाते गए हैं।

मनोहर—इसमें उसकी उतनी ग़लती नहीं है जितनी मेरी। मैंने सदा से उसकी बातों की अवहेलना की है, कभी उसके कहने पर ध्यान नहीं दिया, पढ़ने में ऐसा चिपका कि कभी अन्य आवश्यकताओं की ओर ध्यान ही नहीं दिया, आज उसका फल भोगता हूँ। मैं एक साथ ही इतने रोगों का शिकार हो गया हूँ कि यथासम्भव शीघ्र उनसे रक्षा का कोई उपाय नहीं दिखाई पड़ रहा है, शरीर की छाया की भाँति ये रोग मेरे पीछे पड़ गए हैं। मुझसे कई बार मित्रों ने कहा—भाई! अङ्गरेज़ी ढङ्ग की शिक्षा स्वास्थ्य का संहार करने वाली होती है, उसकी रीति-नीति को हम लोग पालन नहीं करते हैं, आहार, व्यवहार, व्यायाम, प्राणायाम की ओर आँख उठा कर भी नहीं देखते, सिर्फ़ पुस्तकों को रटने में लगे रहते हैं। ऐसा करने से सोने का घर मटियामेट करना पड़ता है। आज उनका कहना अक्षरशः ठीक हुआ। मैं किताबी कीड़ा बन कर किताबों को चाटना जानता था; किन्तु पुस्तकों ने मुझे ही चाट खाया, अब पश्चात्ताप के अतिरिक्त और कुछ हाथ नहीं आ रहा है।

भानु—आपके मित्रों का कहना कई अंशों में ठीक है, किन्तु मैं आशा को बिलकुल निर्दोष नहीं समझती हूँ, मैं मानती हूँ कि आपको अपने स्वास्थ्य का स्मरण नहीं था, किन्तु यह क्या समझ बैठी थी? आपके लिए यत्न क्यों नहीं किया? आपके स्वास्थ्य की ओर ध्यान क्यों नहीं दिया?

आशा—मैं भी अपनी भूल स्वीकार करती हूँ, मैं अपने को बिलकुल निर्दोष कैसे समझूँ, बीतो भूलों का प्रायश्चित्त पश्चात्ताप है, लेकिन उससे काम नहीं चलेगा। अब क्या करना चाहिए, इसकी युक्ति बताओ, अब से सावधान हो जाने की प्रतिज्ञा करती हूँ।

भानु—अब भी कुछ अधिक नहीं बिगड़ा है, सुधरने का अवसर सामने है, बाबू साहब के अच्छे हो जाने पर इसकी तरकीब बताऊँगी।

मनोहर—आपकी मुझ पर असीम कृपा रहा करती है, इसका पता मुझको पहले से ही मिल गया था, आज उसका प्रमाण भी मिल गया। परमात्मा आपका भला करें, यही प्रार्थना है।

भानु—मैं अबोध अबला हूँ, आप मेरी व्यर्थ की प्रशंसा करके मुझे लज्जित न कीजिए। बहिन आशा से मुझे बचपन से ही ऐसा प्रेम है जिससे मैं क्षण-भर के लिए भी उससे अलग रहना नहीं चाहती, वह मेरे शरीर का प्राण है।

नई विपत्ति

उस दिन मनोहर बाबू भानु से अधिक देर तक बातें करते रहे। जिस समय उन्होंने भानु के मुख से बी० ए० की परीक्षा की तिथि बढ़ जाने का नाम सुना, उसी समय से उनके चित्त की प्रसन्नता बढ़ गई, रोग दूर होता हुआ मालूम होने लगा। दूसरे ही दिन उनके स्वास्थ्य में बहुत-कुछ परिवर्तन होता दिखाई पड़ने लगा। उस दिन से आशा बड़ी दिलचस्पी से उनकी सेवा करने लगी, पति को नियत समय पर स्नान-भोजनादि कराती। मनोहर भी अपनी धर्मपत्नी के आग्रह को टाल न सकते, थोड़े ही समय में वे बिलकुल भले-चङ्गे हो गए।

किसी ने सत्य कहा है कि विपत्ति अकेली नहीं आती। ईश्वर की अद्भुत् लीला जानी नहीं जाती, मनुष्य करना

कुछ चाहता है और परमात्मा कुछ और ही कर दिखाते हैं। आशा उम्मीद कर चुकी थी कि अब स्वामी आरोग्य हुए, अब अच्छा दिन आ गया, किन्तु फल विपरीत हुआ, वे पूरे स्वस्थ हो भी नहीं पाए थे कि उनके आधार, उस घर के स्तम्भ कैलाश बाबू विषैले सर्प के काट खाने से स्वर्गीय हो गए। मनोहर पर भारी विपत्ति आ पड़ी। आशा की माता भी स्वामी के वियोग से मृत्यु की बाट जोह रही थी—इस असह्य कष्ट से आशा के हृदय पर जो चोट पहुँची, उसका अनुमान उसी प्रकार की दुःखिनी कर सकती हैं।

मनोहर की आँख के आगे अन्धकार-सा प्रतीत होने लगा, पैर के नीचे की धरती टल सी गई, विपत्ति की घंबराहट में पड़ कर जन्म का दुखिया मनोहर हक्का-बक्का हो गया। क्या करे क्या न करे, यह उसे सूझता नहीं था। आशा की माता पर जो विपत्ति फट पड़ी उसे वही जानती थी। वह सती होना चाहती थी, किन्तु एकमात्र पुत्री आशा को अथाह संसार-सागर में छोड़ जाना उचित न समझ, उसके आँसू पोंछने को रह गई। कैलाश बाबू अपना देश, अपना घर छोड़ दूर नौकरी करने आए थे। घर पर उनके एक छोटे भाई थे, पिता की कमाई हुई बहुत-कुछ स्थायी सम्पत्ति थी। किन्तु उन्होंने सब छोड़ दी थी। भाई को ही सब धन सौंप दिया था। इसी विचार से उनकी धर्म-

पत्नी कन्या को लेकर वहाँ जाने को राज़ी नहीं हुईं। कैलाश बाबू के दिए रुपयों से घर का ख़र्च चला कर आशा की माता ने कुछ रुपए बचा रक्खे थे। उन्हीं रुपयों से पति का श्राद्ध किया और मकान का किराया चुका कर घर का ख़र्च चलाना आरम्भ किया। मनोहर बाबू इस बार की घटना से अधिक अधीर हुए और उन्होंने पढ़ने की ओर से बिलकुल मुख मोड़ लिया। उनकी सास ने बहुत तरह से उनको समझाया, किन्तु किसी प्रकार वे पढ़ने को राज़ी नहीं हुए। उनको विधवा सास, पत्नी और अपने पेट की चिन्ता हुई। घर में न तो स्थायी सम्पत्ति देखते थे और न कोई दूसरा उपाय ही नज़र आता था। ऐसी अवस्था में उनको नौकरी करने की इच्छा हुई। समाचार-पत्रों में विज्ञापन ढूँढ़ने लगे। "आवश्यकता है" पर विशेष दृष्टि डालते थे। कई जगह के लिए प्रार्थना-पत्र भी भेजना आरंम्भ किया। कितने ही स्थानों के लिए इष्ट-मित्रों से यत्न भी कराने लगे। नित्य डाकघर की दौड़ लगाने लगे। चिट्ठियों का सिरनामा पढ़ते समय बड़ी उत्कण्ठा से उस ओर कान लगाने लगे। ज्योंही उनके नाम का कोई पत्र निकल आता, त्योंही वे बहुत बड़ी आशा से उसे हाथ में लेकर उत्सुकता के साथ देखते हुए पढ़ना आरम्भ करते, किन्तु किसी पत्र से सन्तोषजनक समाचार न मिलता। कोई लिखता, "आप

अपने कार्य का अनुभव लिखें, मुझे कॉलेज के विलासी विद्यार्थियों की आवश्यकता नहीं है।" कोई लिखता, "मुझको आई० ए० की आवश्यकता थी, किन्तु अल्प वेतन ही में एम० ए० कार्य करने आते हैं, अतएव अब आपकी आवश्यकता नहीं है।" कोई लिखता, "मुझे आई० ए०, बी० ए० की आवश्यकता नहीं है, महाजनी खाते का जानकार मुनीम चाहता हूँ।" कोई लिखता, "अभी आपके प्रार्थना-पत्र पर विचार नहीं किया गया, मेरे यहाँ सिर्फ़ एक व्यक्ति की आवश्यकता है, जिसके लिए ६५ उम्मीद्-वारों के प्रार्थना-पत्र आए हैं, अतएव अमुक तिथि पर सबों की परीक्षा ली जायगी, उनमें सब से प्रथम होने वाले को ही वह जगह मिलेगी।" इन उत्तरों को पढ़-पढ़ मनोहर बाबू अत्यन्त दुखी रहने लगे। कई महीने तक यत्न करते रहने पर भी जब उनको कोई जगह नहीं मिली, तब अत्यन्त अधीर हो गए। उनको अधिक दुखी देख कर आशा की माता ने उनसे कहा—बेटा, तुम अधिक दुखी न रहो। तुम्हारा मुख देख कर ही हम दोनों माता-पुत्री जीवन धारण कर रही हैं। अभी मेरे बुरे दिन नहीं बीत पाए हैं। यत्न करो, अवसर आने पर आप ही आप कार्य सिद्ध हो जायगा।

मनोहर—मैंने बड़े बुरे नक्षत्र में जन्म लिया था, जीवन-भर दुखी रहा और जिसके आश्रय में रहा उसको

भी दुःख ही पहुँचाता रहा। इस पापी पेट के भरने के लिए जिसका अन्न खाया, उसी का अपकार किया। आज तक मुझसे किसी का उपकार नहीं हो सका। जिन माता-पिता ने बहुत आशा कर मुझको पाला, जीवन भर मेरे लिए कष्ट उठाए, अन्त समय मैं उनकी सेवा भी नहीं कर सका। मास्टर साहब ने मेरे उपकार के लिए क्या नहीं किया, किन्तु बुढ़ापे में भी मैं उनको सुख नहीं पहुँचा सका। अब किस प्रकार समझूँ कि इस शरीर से किसी की भलाई कर सकूँगा? आप दोनों को मेरे लिए बहुत विपत्तियाँ झेलनी पड़ीं, पर सुख के दिन नहीं देख पाए।

आशा की माता—इसमें तुम्हारा कुछ दोष नहीं है। तुमने ऐसा कोई कार्य नहीं किया, जिससे हम सबको दुःख हो, लेकिन हाँ दुर्भाग्य से अभी ऐसे ही समय को देखती रही हूँ। सर्वदा एक ही अवस्था नहीं रहती। प्रकृति में भी समय के अनुसार परिवर्तन हुआ करता है। इसी धारणा के अनुसार हम लोगों के बुरे दिन भी दूर हो जायँगे। जहाँ कहीं जगह ख़ाली हो, यत्न करो, भगवान् किसी दिन अभिलाषा पूरी करेंगे ही।

मनोहर—अब तक मास्टर साहब थे, इसलिए भोजन-वस्त्र की चिन्ता नहीं रहती थी और उनके पीछे अब कौन आवश्यकता की ओर आँख उठाएगा। इतने दिनों

तक किस प्रकार आपने काम चलाया, इसका भी पता मुझको नहीं हुआ।

आशा की माता—अभी और कुछ दिनों तक मैं चलाऊँगी।

जिस समय वे इस प्रकार बातें कर रहे थे, उसी समय किसी ने बाहर से आवाज़ दी—मनोहर बाबू! मनोहर बाबू!

डाकिए का कण्ठ-स्वर पहचान कर मनोहर बाबू बड़ी उत्सुकता से बाहर आए। उनके आते ही डाकिए ने एक लिफ़ाफ़ा उनके हाथ में दिया। वे पत्र लेकर भीतर आए। उनके मुख पर प्रसन्नता की रेखा खिंची देख कर आशा की माता ने कहा—क्यों? कहाँ का पत्र है?

मनोहर—जमालपुर ई० आई० आर० रेलवे के लोको-ऑफ़िस का।

आशा की माता—क्या लिखा है?

मनोहर—उसने बुलाया है, परीक्षा लेकर जगह देगा।

आशा की माता—क्या आशा करते हो?

मनोहर—वहाँ बहुत कम पढ़े-लिखे आदमी काम चलाते हैं। अङ्गरेज़ी लिखना-पढ़ना जानना आवश्यक है। ऐसी अवस्था में जगह मिलने की बहुत-कुछ आशा है।

आशा की माता—परीक्षा का बखेड़ा है।

मनोहर—परीक्षा में मैं पीछे नहीं रहूँगा।

आशा की माता—कितने रुपए महीने की जगह है ?

मनोहर—यह मालूम नहीं है। सिर्फ़ इतना ही जानता हूँ कि पहले वाले जो बहुत कम पढ़े-लिखे हैं, चार-पाँच सौ तक मासिक पाया करते हैं। हम सबों की विपत्ति की ओर ध्यान दे तो अन्यान्य स्थानों से कम वेतन नहीं देना चाहिए। प्रारम्भ में पचास-साठ रुपए मासिक से अधिक न देगा, लेकिन प्रति वर्ष दश रुपए माहवार के हिसाब से बढ़ाया करेगा, साथ ही साथ हर महीने कुछ रुपए वेतन से काट कर और उतना अपने पास से मिला कर नौकरी करने वाले के नाम जमा कर दिया करेगा। इन सब बातों को मिलाने से नौकरी बुरी नहीं है।

आशा की माता—क्या कहते हो, नौकरी बुरी नहीं है ? छिः ! इससे भी बढ़ कर पढ़े-लिखे आदमी के लिए कोई बुरी नौकरी हो सकती है ? तुम्हारे मास्टर साहब तुमसे अधिक पढ़े नहीं थे । वे भी आई० ए० तक पढ़े थे, तो भी उनको डेढ़ सौ मासिक से कभी कम नहीं मिला। तुम तो बी० ए० तक पढ़ चुके हो, सिर्फ़ परीक्षा ही शेष रह गई है, तिस पर पचास-साठ रुपए की नौकरी ! इतनी कठिनता ! मेरे बड़े भाई, जो सिर्फ़ कैथी हिन्दी लिखना-पढ़ना जानते हैं, ज़मींदार के यहाँ नौकर हैं, दो सौ रुपए मासिक उपार्जन करते हैं।

मनोहर—आप उन सबों से मेरी तुलना व्यर्थ ही

करती हैं। वह समय गया। अब दो दमड़ी के एफ़० ए० और बी० ए० हो गए। गली-गली मारे-मारे फिरते हैं। अभी तक कुछ ऐसे हैं जिनका बड़े-बड़ों से सम्बन्ध तथा परिचय है। वे ही अच्छी नौकरी पाते हैं। उनके लिए अभी वही समय है। ज़मींदार की नौकरी के विषय में भी अच्छी जगह उन्हीं को मिलती है, जिनकी वहाँ तक पहुँच है। हम सबों को कौन पूछता है?

आशा की माता—भानु के स्वामी पुलिस-विभाग में बड़े ऑफ़िसर हैं। उनसे कहा जाय तो वे कुछ कर सकते हैं। उनकी कृपा भी हमारे घर पर रहा करती है।

मनोहर—उस विभाग में मेरे लिए यत्न करना हीं व्यर्थ है। प्रथम तो मैं मास्टर साहब की आज्ञा के अनुसार उधर जाना नहीं चाहता और यदि जाने को तैयार भी होऊँ तो मेरी गुज़र ही नहीं होगी, लोग मुझे प्रवेश भी नहीं करने देंगे। इन सब बातों के विचारने से उधर का नाम ही न लेना भला है।

आशा की माता—उधर तुम्हारा प्रवेश क्यों नहीं हो सकता?

मनोहर—वहाँ डॉक्टरी परीक्षा की बड़ी कड़ाई है। मैं कमज़ोर आदमी ठहरा। न तो मेरे सीने की ही उतनी मोटाई है और न मुझमें उतना शारीरिक बल है कि मैं सफल होऊँगा इसीलिए इस विभाग में जाना नहीं चाहता।

आशा की माता—शिक्षा-विभाग में ही यत्न करो।

मनोहर—कई जगह प्रार्थना-पत्र दिया जा चुका है, किन्तु सफलता की आशा कहीं से नहीं दिखाई देती। शिक्षा-विभाग में भी अब आई० ए० की आशा पर पानी ही फिर गया। हाई-स्कूलों में तो अब उन्हीं की नियुक्ति होती है जो बी० ए० से कम नहीं हैं, लेकिन वेतन मिलेगा अधिक से अधिक पचास रुपए मासिक। छोटे-छोटे स्कूलों में तीस-चालीस रुपए महीने की नौकरी मिल सकती है। किन्तु वहाँ भी विधवा की शारीरिक अवस्था की भाँति कभी उन्नति होती ही नहीं। सरकारी सहायता प्राप्त स्कूलों में तो उनकी और भी मिट्टी पलीद होती है। अधिक दिनों की नौकरी होने पर वेतन-वृद्धि होने के बदले घटता ही जाता है। सञ्चालक लोग कहते हैं, अभी कोष में रुपए नहीं हैं, इसलिए आपको अब कम लेना पड़ेगा, किन्तु हस्ताक्षर करना होगा कि उतने ही पर जितना अभी आप पा रहे हैं। इन सब दुर्गतियों को ध्यान में लाते ही जी चाहता है कि ऐसी ग़ुलामी को लात मार खेती करना भला है। किन्तु लाचारी है, न मेरे पास ज़मीन है और न किसानों जैसा शरीर में बल है। किसान शीत, वर्षा तथा घाम की कुछ परवा नहीं करते। किन्तु इस पाश्चात्य-शिक्षा ने मेरे शरीर को इतना कमज़ोर बना दिया है कि कहीं असमय भींग जाने का अवसर मिले तो फिर

महीनों तक ज्वर-देव दर्शन देने आया करेंगे। ऐसी अवस्था में मुझसे किस-किस विषय की आशा की जा सकती है?

आशा की माता ठण्ढी साँस छोड़ती हुई बोली—यदि ऐसा ही है तो जो छोटी-मोटी नौकरी मिले और यदि उसे सँभाल सको तो स्वीकार कर लो, अन्यथा घर में बैठे रहो। तुमको देख-देख कर ही मैं प्रसन्न रहूँगी, ईश्वर चाहेगा तो पीछे कभी दुख दूर होगा।

मनोहर—घर-ख़र्च कैसे चलेगा?

आशा की माता—महात्मा जी ने राह दिखा दिया है, हम दोनों माँ-बेटियों के लिए आज ही बाज़ार से दो चर्ख़े ख़रीद कर ला दो, लोग उसे दीनानाथ का सुदर्शन-चक्र कहते हैं। जो सदा दुखियों के दुख दूर करने में आगे रहता आया है, वही मेरे दुखों को भी दूर करेगा। किन्तु इस अवस्था में भी तुमसे एक प्रार्थना है, वह यह कि तुम्हारी प्रसन्नता ही हम दोनों माँ-बेटियों का जीवन है। अतएव तुम प्रसन्न रहा करो और यदि किसी प्रकार की चिन्ता के चपेट में पड़े तो सर्वनाश होने में अधिक विलम्ब नहीं होगा। अभी घर-ख़र्च के लिए तुमसे सहायता लेने की आवश्यकता नहीं है। तुम जमालपुर जाने की इच्छा रखते हो तो जाओ, अन्यथा उसकी भी आवश्यकता नहीं है। घर में रह कर पहले स्वास्थ्य सुधार लो।

मनोहर—चर्ख़ा अभी लाए देता हूँ। जमालपुर वालों

ने जब बुला भेजा है तो एक बार वहाँ भी जाना उचित है। देखें क्या कहता है। यदि कोई मनोतीत स्थान मिल जायगा तो रहूँगा, अन्यथा वापस आकर कोई दूसरा यत्न करूँगा। इसके अतिरिक्त और भी कई जगहों के लिए प्रार्थना-पत्र भेज रक्खा है, देखें और कहीं से कुछ समाचार आता है या नहीं।

इतना कहने के बाद मनोहर आशा से पाँच रुपए लेकर चर्खा ख़रीदने के लिए बाज़ार की ओर गए और इधर आशा की माता चिन्तित होकर घर में जा लेटी। माता को चिन्ता में लीन देख आशा को भी दुख हुआ, किन्तु वह उसे अपने हृदय के कोने में दबा, बाहरी प्रसन्नता दिखाती हुई घर के कार्य को सँभालने लगी। कसीदा का कार्य वह बहुत अच्छा जानती थी और उसी में अपना अधिक समय लगाया करती थी।

आशा पर पानी

वित्री के स्वभाव में पहले से बहुत-कुछ परिवर्तन हो गया। एक पुत्र हो जाने से उसके स्वार्थ की मात्रा जो बहुत कम हो गई थी, फिर पहले की भाँति हो गई, किन्तु तब भी वह अपने जेठ के पुत्र मनोहर और उनकी कन्याओं को बिलकुल भूल न सकी। कभी-कभी स्मरण कर लिया करती थी। रेवती को कभी-कभी अपने घर बुलवाया भी करती थी, लेकिन वह स्नेह से नहीं, स्वार्थ से। अर्थात् जब कभी कार्य की भीड़ होती या आप अस्वस्थ होती तो घर का कार्य सँभालने के लिए रेवती को आग्रहपूर्वक बुलवा लेती। रेवती अपने घर के आवश्यक कार्यों को छोड़ कर भी चाची की आज्ञा पालने आया करती थी। कभी-कभी मनोहर को भी चचा का स्मरण होता, किन्तु

तब भी वह उनको पत्र नहीं लिखता, क्योंकि कई बार पत्र लिखने पर भी गुलाब बाबू ने उसके पत्र का कोई उत्तर नहीं दिया था। इसका कारण यह था कि वकालत उनकी ऐसी चल निकली कि किसी समय दम लेने की भी छुट्टी नहीं मिलती थी। जिस समय मनोहर का पत्र मिलता उसी समय वे उसका स्मरण कर लेते, किन्तु पीछे एक-दम भूल जाते। मनोहर इसका मतलब लगा रहा था कि इन दिनों मेरे दुर्भाग्य से चचा मेरी सुधि भी नहीं लेते हैं, ऐसी अवस्था में कष्ट देने के लिए वहाँ तक जाना ठीक नहीं। फिर भी मैं अब अकेला नहीं हूँ स्त्री और सास की किस पर छोड़ जाऊँ। इन सब बातों को विचार कर ही वे वहाँ नहीं जाया करते थे। उस दिन घर में जमाल-पुर जाने की बात निश्चय कर दूसरे दिन तड़के ही रेलवे-स्टेशन पर आ पहुँचे। जमालपुर की ओर जाने वाली गाड़ी के आने में दस मिनिट की देर थी। टिकट बँट रहा था। टिकट ख़रीद कर मनोहर जी प्लेटफ़ॉर्म पर टहल रहे थे कि अकस्मात् उनको एक मित्र से, जो बहुत दिनों से नहीं मिला था, भेंट हुई। मनोहर जी का वह मित्र किसी ऊँचे पद पर नियुक्त था। मनोहर बाबू मुस्कराते हुए मित्र की ओर आगे बढ़े, किन्तु वह इनसे सिर्फ़ "कहो, कैसे हो" कह कर आगे बढ़ गया। मनोहर मित्र के इस अपमानजनक व्यवहार से दुखी होकर वहीं

ठिठक गए, आगे भी नहीं बढ़े और न उनके मित्र ने ही उनकी ओर ध्यान दिया। सनसनाती हुई रेलगाड़ी भी आ पहुँचा। मनोहर जी थर्ड क्लास के एक डिब्बे का दर-वाज़ा खोल उसमें प्रवेश करने को ही थे कि उधर से एक साथ ही "जगह नहीं है, जगह नहीं है" की गुहार करते हुए कई सण्ड-मुसण्ड तिलङ्गे आगे आ खड़े हुए। मनोहर दूसरे डिब्बे की ओर बढ़े, किन्तु प्रायः प्रत्येक डिब्बे की यही अवस्था थी। गाड़ी खुलने का समय हो गया। इधर से उधर चक्कर लगाते ही गाड़ी की सीटी हुई। भले मनुष्य को इस प्रकार इधर से उधर दौड़ते देख सेकेण्ड क्लास के डिब्बे में बैठे एक सभ्य व्यक्ति ने अपने डिब्बे का किवाड़ा खोल कर मनोहर को बुला लिया। सेकेण्ड क्लास का टिकट नहीं रहने से मनोहर जी उसमें बैठना नहीं चाहते थे, किन्तु गाड़ी खुल रही थी और उसके बाद फिर कोई दूसरी गाड़ी मिलने वाली नहीं थी और उसी दिन की बुलाहट थी, इसलिए वे उसी डिब्बे में बैठ गए। गाड़ी खुल जाने पर मनोहर बाबू ने डिब्बे के गद्देदार बेञ्चों की ओर आँखें उठाईं। देखते हैं कि एक युवती चादर ओढ़े सिमट कर कोने में बैठी है और उससे कुछ आगे वही युवक, जिसने उसको बुलाया था, अङ्गरेज़ी पोशाक पहने बैठा है। मनोहर जी कृतज्ञता प्रकाश करने के लिए कुछ बोलना चाहते थे, किन्तु न मालूम क्या समझ कर कुछ

नहीं बोले। युवती छिपी आँखों से मनोहर की ओर देख रही थी, उन तीनों के अतिरिक्त डिब्बे में और कोई नहीं था। युवती मनोहर के बगल में बैठ, घूँघट हटा कर बोली—आप कहाँ जा रहे हैं मनोहर बाबू? मनोहर युवती को पहचान कर धीरे-धीरे बोले—जीविका के अन्वेषण के लिए। जब से आपकी शिक्षा को ग्रहण किया, तब से मेरे स्वास्थ्य में बहुत परिवर्तन हुआ, किन्तु मास्टर साहब के स्वर्गीय हो जाने से मेरा हाथ-पैर ही टूट गया। आप लोग कहाँ जा रहे हैं?

युवती अपने प्राणपति की ओर देखती हुई बोली—यही आपकी आशा के पति हैं। इनके विषय में मैं आपसे कई बार कह चुकी हूँ।

जिस समय युवती मनोहर के निकट आकर बोलने लगी उस समय युवक टकटकी लगाए आश्चर्य-भरी दृष्टि से देख रहे थे। उनको आश्चर्य हो रहा था कि यह युवक कौन है।

युवती की बातों से उनका आश्चर्य हर्ष में परिणत हो गया। वे अपनी जगह से उठ कर मनोहर से हाथ मिलाते हुए बोले—बड़े सौभाग्य से आज आपसे भेंट हुई। कहिए, कुशल-मङ्गल है?

मनोहर—आपकी दया से मेरा मङ्गल है। मैं अपनी बीती बात क्या बताऊँ। आपको मेरी रामकहानी भली-भाँति मालूम होगी।

"आपकी सब बातें मुझको मालूम हैं। समय-समय पर आपकी देवी जी के पत्र इनके पास आया करते हैं। आप इन सब बातों के लिए चिन्ता न कीजिए। इस संसार का ऐसा ही व्यवहार है, परमात्मा की लीला अपार है। सम्मुख आप सुख-दुःखों का स्वागत करने के लिए सदा एक भाव से तैयार रहना चाहिए। आप इन दिनों सङ्कट में पड़ गए हैं, इसकी सूचना मुझको मिल गई है। यदि आप पुलिस-विभाग में कार्य करने की इच्छा करते हों तो इस वर्ष उम्मीदवारों में नाम लिखा दीजिए, डॉक्टर की जाँच वग़ैरह मैं ही ठीक करा दूँगा। लेकिन अभी उसमें कुछ विलम्ब है, इतनी अवधि तक यदि कहीं अच्छी जगह मिल जाए तो स्वीकार कर लीजिए।

मनोहर की आशा-लता लहलहा उठी। वे मन ही मन भानु के स्वामी की प्रशंसा करते हुए बोले—ईश्वर की सृष्टि में ऐसे-ऐसे उदार मनुष्य भी हैं। धन्य परमात्मा!

गाड़ी जमालपुर स्टेशन पर आ लगी। मनोहर डिब्बे से बड़ी जल्दी उतर गए। उतरते समय भानु ने एक बन्द लिफ़ाफ़ा, जिस पर आशा का नाम लिखा हुआ था, मनोहर के हाथ में देकर कहा—मेरी आशा के हाथ में दे दीजिएगा और यह भी कह दीजिएगा कि इनकी बदली पटने की हो गई, हम सब वहीं जा रहे हैं।

इच्छा रहने पर भी मनोहर ने उस लिफ़ाफ़े को न

खोला। उसी अवस्था में जेब में रख टिकट दे फाटक से बाहर हो गए। बाहर ताँगे वाले मुसाफ़िरों के स्वागत के लिए बड़ी विलक्षणता के साथ खड़े स्वागत-गान गा रहे थे। मनोहर जी एक किराए के ताँगे पर सवार हो लोको-सुपरिन्टेन्डेएट की कोठी पर पहुँचे। वहाँ पहुँचकर अपने नाम का कार्ड साहब के पास भेजा, जिसके उत्तर में साहब ने ऑफ़िस में मिलने को लिखा। मनोहर जी उसी समय उसी ताँगे पर बाज़ार को वापस आए और सार्वजनिक धर्मशाले में ठहर कर स्नान-भोजनादि के कार्य में लगे। यथासमय भोजनादि से निवृत होकर वे रेलवे-ऑफ़िस के फाटक पर पहुँचे। वहाँ का दृश्य देखकर उनको बड़ा आश्चर्य हुआ। न्यूनाधिक अस्सी उम्मीदवार अपना-अपना प्रार्थना-पत्र लेकर दरबान की ओर टकटकी लगाए आशा-भरी दृष्टि से देख रहे थे। उन लोगों से मिलने पर मनोहर जी को मालूम हुआ कि यहाँ नित्य इसी प्रकार उम्मीदवारों की भीड़ लगी रहती है। प्रायः प्रति दिन बीस-पचीस प्रार्थियों के प्रार्थना-पत्र पर लिखा जाता है—"जगह ख़ाली नहीं है।" जिनके प्रार्थना-पत्र पर यह लिखा जाता है, वे बेचारे निराश होकर वापस जाते हैं। मनोहर बाबू ने उनसे यह भी पूछा कि आजकल किस योग्यता के उम्मीदवार नियुक्त किए जाते हैं? उत्तर मिला, कम से कम फ़र्स्ट डिवीज़न में एएट्रेन्स पास किए

हुए और उससे अधिक जितनी योग्यता वाले हों, किन्तु उसके साथ ही साथ यह भी जान लीजिए कि यहाँ "खर गुड़ एक भाव" वाली कहावत चरितार्थ हुआ करती है। एम० ए०, बी ५० और एन्ट्रेन्स सबको बराबर वेतन मिलता है।

मनोहर—क्यों ?

"इसलिए कि जगह एन्ट्रेन्स की है, उस पर चाहे जितने योग्य आकर रहें सभी को सिर्फ २८) अट्ठाइस रुपए में कार्य आरम्भ करना होता है। पीछे चार रुपए वार्षिक उन्नति हुआ करती है।"

"अच्छे पढ़े-लिखे ऐसा क्यों करते हैं ? किसलिए इतने कम वेतन पर आकर रहते हैं ?"

"भाई साहब ! आपका रोगी शरीर भी कहता है कि आप भी इस राक्षसी शिक्षा-प्रणाली के शिकार हो चुके हैं, अन्यथा इतनी कम अवस्था में आँखों पर ऐनक न चढ़ाते। बस, अपने से औरों का पता लगा लीजिए। इन दिनों साधारण श्रेणी के पढ़े-लिखे लोगों को उनकी योग्यता के अनुसार नौकरी मिलती नहीं है। खेती या गृहस्थी का कार्य वे सँभाल नहीं सकते हैं, आखिर करें क्या ? जो मिलता है उसी को स्वीकार कर लेते हैं, बैठे से बेगार भली।"

उन सबकी बातों से मनोहर बाबू निराश हो गए

असमञ्जस से आगे बढ़े। द्वारपाल को अपने नाम का कार्ड साहब तक पहुँचा देने को कहा। कार्ड लेकर द्वारपाल ने साहब तक पहुँचवा दिया। आठ-दस मिनटों के बाद उनकी बुलाहट हुई। मनोहर जी नौ-पाँच करते हुए साहब के पास पहुँचे। साहब ने उनका नाम-धाम पूछ कर एक बाबू को परीक्षा लेने को कहा। बाबू ने उनको परीक्षा-स्थान में बैठा कर "नगर-वास" पर एक लेख लिखने को कहा और अङ्कगणित के चार विविध प्रश्न हल करने को दिए। मनोहर जी ने दो घण्टे में एक ललित लेख और चारों हिसाब हल करके रख दिए। परीक्षक कॉपी देखते ही दङ्ग रह गया। उसके पहले किसी उम्मीदवार ने वैसा सुन्दर लेख नहीं लिखा था। परीक्षक उनके उत्तर-पत्र पर मुग्ध हो गया और बहुत अधिक नम्बर देकर कहा—महाशय, आपकी प्रतिभा किरानी-गिरी के योग्य नहीं है, आप किसी अच्छे कार्य में लगकर अपनी प्रतिभा का विकास करें। यहाँ किसी की प्रतिभा का विकास नहीं होता, बल्कि ह्रास होता है।

मनोहर ने कहा—अभी मुझको इसी सेवा की आवश्यकता है। दुःख का सताया हूँ, कहीं ठौर नहीं मिलती है।

"आपने आई० ए० परीक्षा में पूरी सफलता पाई, विश्वविद्यालय में प्रथम हुए, फिर यहाँ क्या करने आए

हैं ? हो सके तो पुनः पढ़ना आरम्भ कीजिए।" अनेक प्रकार से समझाने पर भी जब मनोहर जी ने नहीं माना तो उनकी बड़ी प्रशंसा करते हुए किरानी बाबू ने उनका कागज़ साहब के पास भेज दिया। साहब मनोहर बाबू पर प्रसन्न हुए, किन्तु उनके दुबले-पतले शरीर को देखकर उसको सन्देह हुआ। उसी समय डॉक्टरी परीक्षा के लिए उनको डॉक्टर के पास भेज दिया। डॉक्टर के पास आने पर मनोहर जी के स्वास्थ्य की जाँच हुई। डॉक्टर ने उनको कमज़ोर बताकर कार्य के योग्य नहीं ठहराया। डॉक्टर की रिपोर्ट पढ़ते ही साहब ने कहा—बाबू, तुम्हारे जैसे कमज़ोर आदमी की यहाँ ज़रूरत नहीं है।

साहब के मुख से इतनी बातें सुनते ही मनोहर जी निराश होकर वापस लौटे, और उसी दिन दो बजे की गाड़ी से वापस आने के विचार से स्टेशन आए। यथासमय गाड़ी आने पर सवार हो घर को चले। विपत्ति अकेली नहीं आती है। अपने भाग्य को कोसते हुए मनोहर जी घर लौट रहे थे। वह आप ही आप कह रहे थे, परमात्मा ने इतनी अङ्गरेज़ी पढ़ा-लिखा कर भी मुझको किसी योग्य नहीं रक्खा। न कोई नौकरी ही मिलती है और न स्वास्थ्य ही अच्छा रहा, जो खेती-बारी का भी कार्य करता। सब तरह से मेरी आशा भङ्ग हो रही है। इसी प्रकार सोचते-विचारते गाड़ी पर आ रहे थे। स्टेशन

के पास आने पर गाड़ी मालगाड़ी से हलकी टक्कर खा गई। मनोहर जङ्गले पर सिर रक्खे सोचते आ रहे थे। गाड़ी के अचानक टकराने से उनको गहरी चोट लगी। अन्यान्य मुसाफ़िरों को भी कुछ-कुछ चोटें आईं। सहसा गाड़ी रुक गई, घायल मुसाफ़िरों को लोग ढूँढ़-ढूँढ़ कर निकालने लगे। बाबू गुलाबचन्द भी उसी गाड़ी से कहीं जाने को थे। स्टेशन के निकट गाड़ी लड़ी, इसलिए वे भी दौड़ कर घायलों को देखने गए। अचानक उनकी दृष्टि तड़फड़ाते हुए मनोहर पर पड़ी। वे उनको पहचान कर विकल हो गए। टेलीफ़ोन द्वारा अपने मित्र को सूचना देकर मोटर मँगवा ली, उसी पर मनोहर को बिठाकर अस्पताल ले गए। बड़ी मुस्तैदी के साथ उनको मलहम-पट्टी बँधवा, उस मोटर द्वारा अपने घर ले गए और बड़ी सावधानी से चिकित्सा कराई। कई दिनों बाद मनोहर को होश आया। ज्ञान होने पर उसने अपना सिर अपनी चाची की गोद में पाया और अपने से कुछ दूर आ को घूँघट डाले खड़ी देखा। बहुत दिनों के उपचार के बाद मनोहर अच्छे हुए, किन्तु पैर के लँगड़े ही रहे। उसके बाद उन्होंने कोई नौकरी नहीं की। चचा के घर से विदा हो फिर अपनी सास के साथ पत्नी को लेकर रहने लगे।

श्यकता पूरी करती रहीं। मनोहर पुस्तकों के मनन-अनुशीलन से समय बचाकर समाचार-पत्रों के लिए लेखादि लिखकर अपना मन बहलाने लगे।

उनकी ओर से आशा पर पानी फिर ही गया, किन्तु आशा के बताए हुए मार्ग का अनुसरण करने से किसी तरह आवश्यकता पूरी होती रही। बहुत दिनों के बाद मनोहर जी को भानु का दिया हुआ पत्र स्मरण हुआ। वह पत्र आशा के हाथ में देकर बोले—यह पत्र तुम्हारी सखी ने दिया है।

लिफ़ाफ़ा खोलने पर उसमें सौ रुपए के नोट तथा मनोहर बाबू की नौकरी दिलाने की आशामय चिट्ठी थी। आशा ने उसी समय पत्रोत्तर में सब बातें स्पष्ट लिखकर अन्त में लिखा कि अब चेष्टा व्यर्थ है—आशा पर पानी फिर गया। निराशा की गोद में बचपन से पला हुआ व्यक्ति शायद ही अपनी उन्नति कर सकता है। वे अब नौकरी की अपेक्षा मज़दूरी करना कहीं अच्छा समझने लगे हैं। हम लोग भी सूत कात कर अपना जीवन निर्वाह करेंगी, पर उनकी मानहानि नहीं होने देंगी, यही हमारा अन्तिम निर्णय है। माता जी की भी यही राय है।

॥ समाप्त ॥

सन्तान-शास्त्र

[ले० विद्या वाचस्पति पं० गणेशदत्त जी गौड़ 'इन्द्र']

भूमिका-लेखक—

श्री० चतुरसेन जी शास्त्री

इस महत्वपूर्ण पुस्तक में बालपन से लेकर युवावस्था तक; अर्थात् ब्रह्मचर्य से लेकर काम-विज्ञान की उच्च से उच्च शिक्षा दी गई है। प्रत्येक गुप्त बात पर भरपूर प्रकाश डाला गया है। प्रत्येक प्रकार के गुप्त-रोग का भी सविस्तार विवेचन किया गया है। रोग और उसके निदान के अलावा प्रत्येक रोग की सैकड़ों परीचित दवाइयों के नुस्खे भी दिए गए हैं।

जो माता-पिता मनचाही सन्तान उत्पन्न करना चाहते हैं, उनके लिए हिन्दी में इससे अच्छी पुस्तक न मिलेगी। काम-विज्ञान जैसे गहन विषय पर यह हिन्दी में पहली पुस्तक है, जो इतनी कठिन छान-बीन करने के बाद लिखी गई है। सन्तान-वृद्धि-निग्रह का भी सविस्तार विवेचन किया गया है। किन-किन उपायों को काम में लाया जा सकता है, इस विषय पर भरपूर प्रकाश डाला गया है। पुस्तक सचित्र है—५ तिरङ्गे और २५ सादे चित्र भी आर्ट-पेपर पर दिए गए हैं। छपाई-सफ़ाई 'चाँद' के निजी प्रेस (दि फ़ाइन आर्ट प्रिन्टिङ्ग कॉटेज) में हुई है, इसलिए इसकी प्रशंसा करना व्यर्थ है। पुस्तक समस्त कपड़े की जिल्द से मण्डित तथा स्वर्ण-अक्षरों से अङ्कित है। ऊपर एक तिरङ्गे चित्र-सहित Protecting Cover भी दिया गया है। इतना होते हुए भी प्रचार की दृष्टि से मूल्य ५) रु० से घटा कर ४) रु० रक्खा गया है। फिर भी स्थायी ग्राहकों को पुस्तक केवल ३) रु० में ही मिलेगी।

जो लोग झूठे कोकशास्त्रों से धोखा उठा चुके हैं, प्रस्तुत पुस्तक देखकर उनकी आँखें खुल जायँगी। शीघ्र ही इस सुन्दर पुस्तक की एक प्रति

आदि आवश्यक एवं उपयोगी विषयों का लेखक ने बड़ी योग्यता के साथ दिग्दर्शन कराया है। उपन्यास होते हुए भी, यह पुस्तक एक व्याख्यान है और इसके पढ़ने से देश की वास्तविक स्थिति आँखों के सामने चित्रित हो जाती है। शान्ता और गङ्गाराम का शुद्ध और आदर्श प्रेम देखकर हृदय गद्गद् हो जाता है। इसमें इन दम्पति का सच्चरित्र और समाज-सेवा की लगन का भाव ऐसी उत्तमता से वर्णन किया गया है कि पुस्तक छोड़ने की इच्छा नहीं होती। साथ ही साथ हिन्दू-समाज के अत्याचार और षड्यन्त्र से शान्ता का उद्धार देखकर उसके साहस, धैर्य और स्वार्थ-त्याग की प्रशंसा करते ही बनती है। पुस्तक बालक-बालिकाएँ, स्त्री-पुरुष सभी के लिए शिक्षाप्रद है। छपाई-सफ़ाई अत्युत्तम और पृष्ठ-संख्या १२५ होने पर भी इसका मूल्य ।।।) बारह आने है; स्थायी ग्राहकों के लिए ।।=)

दाम्पत्य जीवन

काम-विज्ञान सम्बन्धी अनमोल पुस्तक

[लेखिका—श्रीमती सुशीलादेवी जी निगम, बी० ए०]

इस प्रामाणिक ग्रन्थ-रत्न में जिन महत्वपूर्ण विषयों पर प्रकाश डाला गया है, उनमें से कुछ ये हैं—(१) सहगमन (२) ब्रह्मचर्य (३) विवाह (४) आदर्श-विवाह (५) गर्भाशय में जल-सञ्चय (६) योनि-प्रदाह (७) योनि की खुजली (८) स्वप्नदोष (९) डिम्ब-कोष के रोग (१०) कामोन्माद (११) मूत्राशय (१२) जननेन्द्रिय (१३) नपुंसकत्व (१४) अति-मैथुन (१५) शयन-गृह कैसा होना चाहिए? (१६) सन्तान-वृद्धि-निग्रह (१७) गर्भ के पूर्व माता-पिता का प्रभाव (१८) मनचाही सन्तान उत्पन्न करना (१९) गर्भ पर तात्कालिक परिस्थिति का असर (२०) गर्भ के समय दम्पति का व्यवहार (२१) यौवन के उतार पर स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध (२२)

रबर-कैप का प्रयोग (२३) माता का उत्तरदायित्व, आदि-आदि सैकड़ों महत्वपूर्ण विषयों पर—उन विषयों पर, जिनके सम्बन्ध में जानकारी न होने के कारण हज़ारों युवक-युवतियाँ बुरी सोसाइटी में पड़कर अपना जीवन नष्ट कर लेती हैं—उन महत्वपूर्ण विषयों पर, जिनकी अनभिज्ञता के कारण अधिकांश भारतीय गृह नरक की अग्नि में जल रहे हैं; उन महत्वपूर्ण विषयों पर, जिनको न जानने के कारण स्त्री पुरुष से और पुरुष स्त्री से असन्तुष्ट रहते हैं—भरपूर प्रकाश डाला गया है। हमें आशा है, देशवासी इस महत्वपूर्ण पुस्तक से लाभ उठाएँगे। पृष्ठ-संख्या लगभग ३५०; तिरङ्गे Protecting Cover सहित सुन्दर सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल २॥) रु०; 'चाँद' तथा पुस्तक-माला के स्थायी ग्राहकों से १॥।=) मात्र!

केवल विवाहित स्त्री-पुरुष ही पुस्तक मँगावें!

मङ्गल-प्रभात

[ले० स्वर्गीय चण्डीप्रसाद जी, बी० ए० 'हृदयेश']

इस सुन्दर उपन्यास में मानव-हृदय की रङ्गभूमि पर वासना के नृत्य का दृश्य दिखलाया गया है। सामाजिक अत्याचार और बेमेल-विवाह का भयङ्कर परिणाम पढ़कर जहाँ हृदय काँप उठता है, वहाँ विशुद्ध प्रेम, अतुल सहानुभूति और समाज की हित-कामना इत्यादि के सुन्दर दृश्यों को देखकर हृदय में एक अनिर्वचनीय शान्ति का स्रोत बहने लगता है। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रस्तुत उपन्यास में इस विश्व की रङ्गभूमि पर अभिनीत होने वाले पाप और पुण्य के कृत्यों का बड़ा ही मधुर-सुन्दर विवेचन किया गया है।

छपाई-सफ़ाई बहुत सुन्दर है, साथ ही मनोहर सुनहरी समस्त कपड़े

की जिल्द से भी पुस्तक अलंकृत है। पृष्ठ-संख्या लगभग ८००; काग़ज़ ४० पाउण्ड एण्टिक, मूल्य ५) मात्र! स्थायी ग्राहकों के लिए ३।।।) रु०।

शैलकुमारी

[ले० पं० रामकिशोर जी मालवीय, सहकारी सम्पादक 'अभ्युदय']

यह उपन्यास अपनी मौलिकता, मनोरञ्जकता, शिक्षा, उत्तम लेखन-शैली तथा भाषा की सरलता और लालित्य के कारण हिन्दी-संसार में विशेष स्थान प्राप्त कर चुका है। अपने ढङ्ग के इस अनोखे उपन्यास में यह दिखाया गया है कि आजकल एम० ए०, बी० ए० और एफ़० ए० की डिग्री-प्राप्त स्त्रियाँ किस प्रकार अपनी विद्या के अभिमान में अपने योग्य पति तक का अनादर कर, उनसे निन्दनीय व्यवहार करती हैं; किस प्रकार उन्हें घरेलू काम-काज से घृणा उत्पन्न हो जाती है, अपने पति से वे किस प्रकार ख़िदमतें कराती हैं; और उनका गार्हस्थ्य जीवन कितना दुख-पूर्ण हो जाता है। दूसरी ओर यह दिखाया गया है कि पढ़े-लिखे युवकों के साथ फूहड़ तथा अनपढ़ और गँवार कन्याओं का बेजोड़-विवाह ज़बरदस्ती कर देने से दोनों का जीवन कैसा दुखमय हो जाता है।

इन सब बातों के अलावा स्त्री-समाज के प्रत्येक महत्वपूर्ण विषयों पर प्रकाश डालकर उनकी बुराइयाँ दूर करने के उदाहरण दिए गए हैं। चित्रों को देखकर आप हँसते-हँसते लोट-पोट हो जायँगे।

दो तिरङ्गे और चार सादे चित्रों से सुसज्जित लगभग २२० पृष्ठ की इस सुन्दर पुस्तक का मूल्य केवल २) ; स्थायी ग्राहकों से १।।); पहला संस्करण केवल २ मास में हाथोंहाथ बिक गया था, यही पुस्तक की उत्तमता का सबसे भारी प्रमाण है। नवीन संशोधित संस्करण अभी-अभी प्रकाशित हुआ है।

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

बनमाला

[ले० स्वर्गीय चण्डीप्रसाद जी, बी० ए० 'हृदयेश']

इस पुस्तक की उपयोगिता और सरसता को आप लेखक के नाम ही से मालूम कर सकते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं है कि 'हृदयेश' जी ने अपनी लेखन शैली द्वारा हिन्दी-संसार को चकित कर दिया था और कई बार वे स्वर्ण-पदक भी प्राप्त कर चुके थे।

प्रस्तुत पुस्तक में 'हृदयेश' जी की लिखी हुई 'चाँद' में प्रकाशित सभी गल्पों का संग्रह किया गया है। इन गल्पों द्वारा सामाजिक अत्याचारों तथा कुरीतियों का हृदय-विदारक दिग्दर्शन कराया गया है; और इस विश्व के रङ्ग-मञ्च पर होने वाले पाप और पुण्यमय कृत्यों का मधुर और सुन्दर विवेचन किया गया है। जिन सज्जनों ने 'हृदयेश' जी के उपन्यासों और गल्पों को पढ़ा है, उनसे हमारी प्रार्थना है कि इन छोटी, परन्तु सारगर्भित एवं सरल भाषायुक्त गल्पों को पढ़कर अवश्य लाभ उठावें। पुस्तक के अन्त में २ छोटे-छोटे रूपक (नाटक) भी दिए गए हैं।

पुस्तक की छपाई-सफ़ाई अत्यन्त सुन्दर और पृष्ठ-संख्या लगभग २५० है। सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल ३) रुपए; स्थायी ग्राहकों के लिए २।) रु० मात्र !

विधवा-विवाह-मीमांसा

[ले० श्री० गङ्गाप्रसाद जी उपाध्याय, एम० ए०]

इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ में नीचे लिखी सभी बातों पर बहुत ही योग्यतापूर्ण और ज़बरदस्त दलीलों के साथ प्रकाश डाला गया है :—

विद्याविनोद-ग्रन्थमाला की विख्यात पुस्तकें

(१) विवाह का प्रयोजन क्या है? मुख्य प्रयोजन क्या और गौण प्रयोजन क्या? आजकल विवाह में किस-किस प्रयोजन पर दृष्टि रक्खी जाती है? (२) विवाह के सम्बन्ध में स्त्री और पुरुष के अधिकार और कर्त्तव्य समान हैं या असमान? यदि समानता है, तो किन-किन बातों में और यदि भेद है, तो किन-किन बातों में? (३) पुरुषों का पुनर्विवाह और बहुविवाह धर्मानुकूल है या धर्म-विरुद्ध? शास्त्र इस विषय में क्या कहता है? (४) स्त्री का पुनर्विवाह उपर्युक्त हेतुओं से उचित है या अनुचित? (५) वेदों से विधवा-विवाह की सिद्धि। (६) स्मृतियों की सम्मति। (७) पुराणों की साक्षी। (८) अङ्गरेज़ी क़ानून (English Law) की आज्ञा। (९) अन्य युक्तियाँ। (१०) विधवा-विवाह के विरुद्ध आक्षेपों का उत्तर—(अ) क्या स्वामी दयानन्द विधवा-विवाह के विरुद्ध हैं? (आ) विधवाएँ और उनके कर्म तथा ईश्वर-इच्छा; (इ) पुरुषों के दोष स्त्रियों को अनुकरणीय नहीं; (ई) कलियुग और विधवा-विवाह; (उ) कन्यादान-विषयक आक्षेप; (ऊ) गोत्र-विषयक प्रश्न; (ऋ) कन्यादान होने पर विवाह वर्जित है; (ॠ) बाल-विवाह रोकना चाहिए, न कि विधवा-विवाह की प्रथा चलाना; (ऌ) विधवा-विवाह लोक-व्यवहार के विरुद्ध है; (ॡ) क्या हम आर्यसमाजी हैं, जो विधवा-विवाह में योग दें? (११) विधवा-विवाह न होने से हानियाँ—(क) व्यभिचार का आधिक्य; (ख) वेश्याओं की वृद्धि; (ग) भ्रूण-हत्या तथा बाल-हत्या; (घ) अन्य क्रूरताएँ; (ङ) जाति का ह्रास और (१२) विधवाओं का कच्चा चिट्ठा।

इस पुस्तक में बारह अध्याय हैं, जिनमें क्रमशः उपर्युक्त विषयों की आलोचना बड़े ही ओजस्वी एवं मार्मिक ढङ्ग से की गई है। कई तिरङ्गे और सादे चित्र भी हैं। सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल ३) रु० है; पर स्थायी ग्राहकों के लिए २।) रु०। तीसरा संशोधित और परिवर्द्धित संस्करण प्रेस में है।

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

आशा पर पानी

[ले० श्री० जगदीश झा 'विमल']

यह एक छोटा-सा शिक्षाप्रद सामाजिक उपन्यास है। मनुष्य के जीवन में सुख-दुख का दौरा किस प्रकार होता है, विपत्ति के समय मनुष्य को कैसी-कैसी कठिनाइयाँ सहनी पड़ती हैं, किस प्रकार घर की फूट के कारण परस्पर वैमनस्य हो जाता है और उसका कैसा दुखदाई परिणाम होता है, यह सब बातें आपको इस उपन्यास में मिलेंगी। इसमें क्षमाशीलता, स्वार्थ-त्याग और परोपकार का अच्छा चित्र खींचा गया है। एक बार अवश्य पढ़िए! छपाई-सफ़ाई उत्तम है। मूल्य केवल आठ आने· स्थायी ग्राहकों के लिए छः आने मात्र! नवीन संस्करण छप रहा है।

सफल माता

[लेखिका—श्रीमती सुशीलादेवी जी निगम, बी० ए०]

आज हमारे अभागे देश में शिशुओं की मृत्यु-संख्या अपनी चरम-सीमा तक पहुँच चुकी है। अन्य कारणों में माताओं की अनभिज्ञता, शिक्षा का अभाव तथा शिशु-पालन-सम्बन्धी साहित्य का अभाव प्रमुख. कारण है।

प्रस्तुत पुस्तक भारतीय गृहों की एकमात्र मङ्गल-कामना से प्रेरित होकर सैकड़ों अङ्गरेज़ी हिन्दी, बँगला, उर्दू, मराठी, गुजराती तथा फ्रेन्च पुस्तकों को पढ़कर लिखी गई है। कैसी भी अनपढ माता एक बार इस पुस्तक को पढ़कर अपना उत्तरदायित्व समझ सकती है।

गर्भावस्था से लेकर ९-१० वर्ष के बालक-बालिकाओं की देख-भाल किस तरह करनी चाहिए; उन्हें बीमारी से किस प्रकार बचाया जा सकता है; बिना कष्ट हुए किस प्रकार दाँत निकल सकते हैं; रोग होने पर क्या

और किस प्रकार इलाज और शुश्रूषा करनी चाहिए; बालकों को कैसे वस्त्र पहनाने चाहिए; उन्हें कैसा, कितना और कब आहार देना चाहिए; दूध किस प्रकार पिलाना चाहिए आदि-आदि प्रत्येक आवश्यक बातों पर बहुत उत्तमता और सरल बोल-चाल की भाषा में प्रकाश डाला गया है। इससे अच्छी और प्रामाणिक पुस्तक आपको हिन्दी क्या, बहुत सी भाषाओं में इस विषय पर न मिलेगी, इस बात का हम विश्वास दिलाते हैं।

यदि आपको अपने बच्चे प्यारे हैं, यदि आप उन्हें रोग और मृत्यु से बचाना चाहते हैं, तो इस पुस्तक को स्वयं पढ़िए और गृह-देवियों को अवश्य पढ़ाइए, परमात्मा आपका मङ्गल करेंगे।

सुन्दर छपी हुई, Protecting Cover सहित सजिल्द पुस्तक का मूल्य लागत-मात्र केवल २) रु०; 'चाँद' तथा पुस्तक-माला के स्थायी ग्राहकों से १॥) मात्र!

उमासुन्दरी

[ले० श्रीमती शैलकुमारी देवी]

इस पुस्तक में पुरुष-समाज की विषय-वासना, अन्याय तथा भारतीय रमणियों के स्वार्थ-त्याग और पातिव्रत्य का ऐसा सुन्दर और मनोहर वर्णन किया गया है कि पढ़ते ही बनता है। सुन्दरी सुशीला का अपने पति सतीश पर अगाध प्रेम एवं विश्वास, उसके विपरीत सतीश बाबू का उमा-सुन्दरी नामक युवती पर मुग्ध हो जाना; उमासुन्दरी का अनुचित सम्बन्ध होते हुए भी सतीश को कुमार्ग से बचाना और उपदेश देकर उसे सन्मार्ग लाना आदि सुन्दर और शिक्षाप्रद घटनाओं को पढ़कर हृदय उमड़ है। इतना ही नहीं, इसमें हिन्दू-समाज की स्वार्थपरता, काम-लोलु-

पता, विषय-वासना तथा अनेक कुरीतियों का हृदय-विदारक वर्णन किया गया है। छपाई-सफ़ाई सब सुन्दर है। मूल्य केवल ॥) आने। स्थायी ग्राहकों के लिए ॥-)

अपराधी

हृदय में एक बार ही क्रान्ति उत्पन्न करने वाला मौलिक सामाजिक उपन्यास

[ले० श्री० यदुनन्दनप्रसाद जी श्रीवास्तव]

सच जानिए, अपराधी बड़ा ही क्रान्तिकारी उपन्यास है। इसे पढ़कर आप एक बार टॉल्स्टॉय के "रिज़रेक्शन" विक्टर ह्यूगो के "लॉ-मिज़रेबुल" इब्सन के "डॉल्स हाउस", गोस्ट और ब्रियो के "डैमेज्ड गुड्स" या "मेटरनिटी" के आनन्द का अनुभव करेंगे। किसी अच्छे उपन्यास की उत्तमता पात्रों के चरित्र-चित्रण पर सर्वथा अवलम्बित होती है और इस उपन्यास के चरित्र-चित्रण में सुयोग्य लेखक ने वास्तव में कमाल कर दिया है। उपन्यास नहीं—

यह सामाजिक कुरीतियों और अत्याचारों का जनाज़ा है !!

सच्चरित्र, ईश्वर-भक्त विधवा बालिका सरला का आदर्श-जीवन, उसकी पारलौकिक तल्लीनता, बाद को व्यभिचारी पुरुषों की कुदृष्टि, सरला का बलपूर्वक पतित किया जाना, अन्त को उसका वेश्या हो जाना, यह सब ऐसे दृश्य समुपस्थित किए गए हैं, जिन्हें पढ़कर आँखों से आँसुओं की धारा बह निकलती है।

इधर सरला के वृद्ध चचा का षोडशी बालिका गिरिजा से विवाह कर

नरक-लोक की यात्रा करना और गिरिजा का स्वाभाविक पतन के गह्वर में गिरना कम करुणाजनक दृश्य नहीं है।

रमानाथ नामक एक समाज-सुधारक नवयुवक के प्रयत्न पढ़कर नवयुवकों तथा नवयुवतियों की छाती एक बार फूल उठेगी!! प्रत्येक उपन्यास-प्रेमी तथा समाज-सुधार के पक्षपाती को यह पुस्तक पढ़कर लाभ उठाना चाहिए। छपाई-सफ़ाई सुन्दर, समस्त कपड़े की सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल २॥) रु०; स्थायी तथा 'चाँद' के ग्राहकों से १॥।=) ; डाक-व्यय अलग। पुस्तक पर रङ्गीन 'Protecting Cover' भी चढ़ा है!!

पुस्तक हाथोंहाथ बिक रही है। आज ही एक प्रति मँगा लीजिए, नहीं तो फिर दूसरे संस्करण की राह देखनी होगी।

सती-दाह

[ले० श्री० शिवसहाय जी चतुर्वेदी]

हिन्दी में 'सती' विषय की यह पहली पुस्तक है। 'सती-प्रथा' का इतिहास इस पुस्तक में बड़ी उत्तमता से सप्रमाण अङ्कित किया गया है। इसके अतिरिक्त सती-प्रथा द्वारा होने वाले अनर्थ आदि का दिग्दर्शन भी कराया गया है। इस पुस्तक के पढ़ने से हृदय में करुणा का स्रोत उमड़ आता है। पुस्तक की लेखन-प्रणाली और भाषा इतनी उत्तम और प्रभावोत्पादक है कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। यह पुस्तक प्रत्येक हिन्दी-प्रेमी को पढ़नी चाहिए। २०० पृष्ठ की सचित्र और उत्तम सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल २॥) रु०; स्थायी ग्राहकों के लिए १॥।=) मात्र!

मानिक-मन्दिर

[ले० श्री० मदारीलाल जी गुप्त]

इस पुस्तक की भूमिका में श्री० प्रेमचन्द जी लिखते हैं :—

"उपन्यास का सबसे बड़ा गुण उसकी मनोरञ्जकता है। इस लिहाज़ से श्री० मदारीलाल जी गुप्त को अच्छी सफलता प्राप्त हुई है। पुस्तक आदि से अन्त तक पढ़ जाइए, कहीं आपका जी न ऊबेगा। पुस्तक की रचना-शैली सुन्दर है। पात्रों के मुख से वही बातें निकलती हैं, जो यथावसर निकलनी चाहिए; न कम न ज़्यादा। उपन्यास में वर्णनात्मक भाग जितना ही कम और वार्ता-भाग जितना ही अधिक होगा, उतनी ही कथा रोचक और ग्राहिका होगी। 'मानिक-मन्दिर' में इस बात का काफ़ी लिहाज़ रक्खा गया है। वर्णनात्मक भाग जितना है, उसकी भाषा भी इतनी भावपूर्ण है कि पढ़ने में आनन्द आता है। कहीं-कहीं तो आपके भाव बहुत गहरे हो गए हैं, और दिल पर चोट करते हैं। चरित्रों में, मेरे विचार में, सोना का चित्रण बहुत ही स्वाभाविक हुआ है और देवी का सर्वाङ्ग-सुन्दर। सोना अगर पतिता के मनोभावों का चित्र है, तो देवी सती के भावों की मूर्त्ति। पुरुषों में ओङ्कार का चरित्र बड़ा सुन्दर और सजीव है। विषय-वासना के भक्त कैसे चञ्चल, अस्थिर-चित्त और कितने मधुरभाषी होते हैं, ओङ्कार इसका जीता-जागता उदाहरण है। उसे अपनी पत्नी से प्रेम है, सोना से प्रेम है, कुमारी से प्रेम है और चन्दा से प्रेम है। जिस वक्त जिसे सामने देखता है, उसी के मोह में फँस जाता है। ओङ्कार ही पुस्तक की जान है। कथा में कई सीन बहुत मर्मस्पर्शी हुए हैं। सोना के मिट्टी हो जाने का और ओङ्कार के सोना के कमरे में आने का वर्णन बड़ी ही सनसनी पैदा करने वाले हैं, इत्यादि।"

इसी से आप पुस्तक की उत्तमता का अनुमान लगा सकते हैं।

हैं, वे भी अपने त्योहारों की वास्तविक उत्पत्ति से बिलकुल अनभिज्ञ हैं। कारण यही है कि हिन्दी-संसार में अब तक एक भी ऐसी पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई। वर्त्तमान पुस्तक के सुयोग्य लेखक ने छः मास कठिन परिश्रम करने के बाद यह पुस्तक तैयार कर पाई है! शास्त्र-पुराणों से खोजकर त्योहारों की उत्पत्ति लिखी गई है। इन त्योहारों के सम्बन्ध में जो कथाएँ प्रसिद्ध हैं, वे वास्तव में बड़ी रोचक हैं। ऐसी कथाओं का भी सविस्तार वर्णन किया गया है। मूल्य सजिल्द पुस्तक का १) रु०; पर स्थायी ग्राहकों के लिए केवल ॥।=)॥; नवीन संशोधित संस्करण अभी-अभी प्रकाशित हुआ है। यह तीसरा संस्करण है! ६,००० पुस्तकें हाथोंहाथ बिक चुकी हैं।

गौरीशङ्कर

आदर्श-भावों से भरा हुआ यह सामाजिक उपन्यास है। शङ्कर के प्रति गौरी का आदर्श-प्रेम सर्वथा प्रशंसनीय है। बालिका गौरी को धूर्त्तों ने किस प्रकार तङ्ग किया, बेचारी बालिका ने किस प्रकार कष्टों को चीरकर अपना मार्ग साफ़ किया? अन्त में चन्द्रकला नाम की एक वेश्या ने उसकी कैसी सच्ची सहायता की और उसका विवाह अन्त में शङ्कर के साथ कराया, यह सब बातें ऐसी हैं, जिनसे भारतीय स्त्री-समाज का मुखोज्ज्वल होता है। यह उपन्यास निश्चय ही समाज में एक आदर्श उपस्थित करेगा। छपाई-सफ़ाई सभी बहुत साफ़ और सुन्दर है। पाठिकाओं को इस पुस्तक की भाषा से भी बड़ा आनन्द आएगा। भाषा अत्यन्त सरल, मुहावरेदार लिखी गई है। एक बार अवश्य पढ़िए। दूसरी बार छपकर तैयार है। मूल्य केवल ॥।) स्थायी ग्राहकों से ॥-) मात्र!

मनमोदक

[सम्पादक—श्री० प्रेमचन्द जी]

यह पुस्तक बालक-बालिकाओं के लिए खिलौना है। जैसा पुस्तक का नाम है, वैसा ही गुण है। इसमें लगभग ४५ मनोरञ्जक कहानियाँ और एक से एक बढ़कर ४० हास्यप्रद चुटकुले हैं। एक कहानी बालकों को सुनाइए, वे हँसी के मारे लोट-पोट हो जायँगे। यही नहीं कि उनसे मनोरञ्जन ही होता हो, वरन् बालकों के ज्ञान और बुद्धि की वृद्धि के अतिरिक्त हिन्दी-उर्दू के व्याकरण-सम्बन्धी ज़रूरी नियम भी याद हो जाते हैं। इस पुस्तक को बालकों को सुनाने से 'आम के आम और गुठलियों के दाम' वाली कहावत चरितार्थ होती है। छपाई-सफ़ाई सुन्दर, १६० पृष्ठ की सजिल्द पुस्तक की क़ीमत केवल १) ; स्थायी ग्राहकों के लिए ॥) मात्र! पुस्तक का तीसरा संशोधित संस्करण प्रेस में है।

मनोहर ऐतिहासिक कहानियाँ

[ले० (अध्यापक) श्री० ज़हूरबख़्श जी 'हिन्दी-कोविद']

इस पुस्तक में पूर्वीय और पाश्चात्य, हिन्दू और मुसलमान, स्त्री-पुरुष—सभी के आदर्श छोटी-छोटी कहानियों द्वारा उपस्थित किए गए हैं, जिससे बालक-बालिकाओं के हृदय पर छुटपन से ही दयालुता, परोपकारिता, मित्रता, सचाई और पवित्रता आदि सद्गुणों के बीज को अङ्कुरित करके उनके नैतिक जीवन को महान्, पवित्र और उज्ज्वल बनाया जा सके।

इस पुस्तक की सभी कहानियाँ शिक्षाप्रद और ऐसी हैं कि उनसे बालक-बालिकाएँ, स्त्री-पुरुष सभी लाभ उठा सकते हैं। लेखक ने बालकों की

प्रकृति का भली-भाँति अध्ययन करके इस पुस्तक को लिखा है। हमें आशा है, देशवासी इस पुस्तक को अपना कर हमारे उद्देश्य को सफल करेंगे।

पुस्तक की छपाई-सफ़ाई देखने योग्य है। २५० पृष्ठ की समस्त कपड़े की जिल्द-सहित पुस्तक का मूल्य केवल २) रु०; स्थायी ग्राहकों के लिए १॥) मात्र! नवीन संस्करण अभी-अभी प्रकाशित हुआ है।

मनोरञ्जक कहानियाँ

[ले० (अध्यापक) श्री० ज़हूरबख़्श जी 'हिन्दी-कोविद']

श्री० ज़हूरबख़्श जी की लेखन शैली बड़ी ही रोचक और मधुर है। आपने बालकों की प्रकृति का अच्छा अध्ययन भी किया है। आपने यह पुस्तक बहुत दिनों के कठिन परिश्रम के बाद लिखी है। इस पुस्तक में कुल १७ छोटी-छोटी शिक्षाप्रद, रोचक और सुन्दर हवाई कहानियाँ हैं, जिन्हें बालक-बालिकाएँ बड़े मनोयोग से सुनेंगे। बड़े-बूढ़ों का भी इससे यथेष्ट मनोरञ्जन हो सकता है।

पृष्ठ-संख्या २०० से अधिक, छपाई-सफ़ाई उत्तम है। इस बार पुस्तक सजिल्द प्रकाशित हुई है; फिर भी मूल्य वही १॥) रक्खा गया है; स्थायी ग्राहकों के लिए १=) मात्र!

राष्ट्रीय गान

[चुने हुए वीररस-पूर्ण गानों का अपूर्व संग्रह]

यह पुस्तक चौथी बार छपकर तैयार हुई है, इसी से इसकी लोकप्रियता का अनुमान हो सकता है। इसमें वीर-रस में सने हुए देश-भक्ति-

पूर्ण सुन्दर गानों का अपूर्व संग्रह है, जिन्हें पढ़कर आपका दिल फड़क उठेगा। यह गाने हारमोनियम पर भी गाने क़ाबिल हैं, और हर समय गुनगुनाए भी जा सकते हैं। शादी-विवाह के उत्सव पर तथा साधारण गाने-बजाने के समय यदि गाए जायँ, तो सुनने वाले प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकते! यह गाने बालक-बालिकाओं को कण्ठस्थ कराने के योग्य भी हैं। ९६ पृष्ठ की पुस्तक का दाम केवल चार आने!! सौ पुस्तकें एक साथ मँगाने से २०) रु०। एक पुस्तक वी० पी० द्वारा नहीं भेजी जाती। एक पुस्तक मँगाने के लिए।-) का टिकट भेजना चाहिए।

*

अमृत और विष

अथवा

मुग़ल-दरबार-रहस्य

[ले० प्रोफ़ेसर रामकृष्ण जी शुक्ल, एम० ए०]

यह ऐतिहासिक उपन्यास मुग़ल-दरबार-रहस्य के आधार पर लिखा गया है। यदि नूरजहाँ के शासन-काल के दाँव-पेंच देखना हो; यदि देखना हो कि हिन्दुओं के ख़िलाफ़ मुसलमानों के शासन-काल में कैसे-कैसे भीषण षड्यन्त्र रचे जाते थे, यदि मुसलमान-बादशाहों की काम-पिपासा, उनकी प्रेम-लीला और विलासिता का नग्न-चित्र देखना हो तो इस महत्वपूर्ण ऐतिहासिक उपन्यास को अवश्य पढ़िए। बहादुर राजपूत-नवयुवकों की वीरता का भी आदर्श-नमूना आपको इसमें मिलेगा। जुलेख़ा नामधारिणी एक हिन्दू-महिला की वीरता, साहस और राजनीतिक दाँव-पेंच की सत्य घटनाएँ पढ़कर आपको दाँतों-तले उँगली दबानी पड़ेगी। उस समय का सारा इतिहास बाइस्कोप के तमाशे की तरह आपकी आँखों के सामने नाचने लगेगा। यह एक ऐतिहासिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है, जिसे

विद्याविनोद-ग्रन्थमाला की विख्यात पुस्तकें

एक मनोरञ्जक उपन्यास के आवरण में पढ़कर प्रत्येक स्त्री-पुरुष, बच्चा और बूढ़ा अपनी ज्ञान-वृद्धि कर सकता है। पुस्तक की भाषा बड़ी ललित, सुन्दर और मुहावरेदार है। इतनी अधिक खोज से लिखी हुई, मोती के समान साफ़ अक्षरों में छपी हुई, समस्त कपड़े की जिल्द से मण्डित, स्वर्णाक्षरों से अङ्कित लगभग ८५० पृष्ठ की इस अमूल्य पुस्तक का मूल्य ५), स्थायी ग्राहकों के लिए ३॥) मात्र! नवीन संस्करण प्रेस में है!!

अबलाओं का इन्साफ़

[लेखिका—श्रीमती स्फुरना देवी]

इस पुस्तक में राजपूताने के उच्च हिन्दू-वैश्य एवं ब्राह्मणों की सामाजिक स्थिति का दिग्दर्शन बड़ी योग्यता से कराया गया है। मारवाड़ी-समाज में इस पुस्तक ने एकबार ही क्रान्ति उत्पन्न कर दिया है, इसमें ज़रा सन्देह नहीं। इस पुस्तक की सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि पुस्तक केवल सत्य घटनाओं के आधार पर लिखी गई है। भगवान् धर्मराज की कचहरी का दृश्य तथा अपराधी स्त्रियों के पक्ष में की हुई क्षमादेवी की उच्च कोटि के विचारों से भरी हुई युक्तिपूर्ण बहस और भगवान् धर्मराज के इन्साफ़ का तात्विक वर्णन मौलिकता से भरा हुआ है। पुस्तक केवल मारवाड़ी-समाज के लिए ही नहीं, बल्कि उच्च-वर्ण के हिन्दूमात्र के पढ़ने और विचारने योग्य है। माँगें बहुत ज़्यादा आ रही हैं, शीघ्र ही मँगा लीजिए, नहीं तो तीसरे संस्करण की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। सजिल्द पुस्तक का मूल्य लागत-मात्र ३); 'चाँद' के ग्राहकों के लिए २।); नवीन संस्करण ४० पाउण्ड के बढ़िया फ़ेदरवेट काग़ज़ पर अभी-अभी प्रकाशित हुआ है। ऊपर सुन्दर Protecting Cover भी चढ़ा है।

विद्याविनोद-ग्रन्थमाला की विख्यात पुस्तकें

गुदगुदी

[ले० श्री० जी० पी० श्रीवास्तव, बी० ए०, एल्-एल्० बी०]

पुस्तक का विषय नाम से ही प्रकट है। इसमें श्रीवास्तव जी के विनोदपूर्ण चुटकुलों का सुन्दर संग्रह है। एक चुटकुला पढ़िए—हँसते-हँसते पेट में बल पड़ जायँगे, यही इस पुस्तक का संक्षिप्त परिचय है। मूल्य केवल ॥) ; स्थायी ग्राहकों के लिए ।=) मात्र! नवीन संस्करण तीसरी बार अभी-अभी छपा है।

प्रेम-प्रमोद

[ले० श्री० प्रेमचन्द जी]

यह बात बड़े-बड़े विद्वानों और अनेक पत्र-पत्रिकाओं ने एक स्वर से स्वीकार कर ली है कि श्री० प्रेमचन्द जी की सर्वोत्कृष्ट सामाजिक रचनाएँ 'चाँद' ही में प्रकाशित हुई हैं। प्रेमचन्द जी का हिन्दी-साहित्य में क्या स्थान है, सो हमें बतलाना न होगा। आपकी रचनाएँ बड़े-बड़े विद्वान् तक बड़े चाव और आदर से पढ़ते हैं। हिन्दी-संसार में मनोविज्ञान का जितना अच्छा अध्ययन प्रेमचन्द जी ने किया है, वैसा किसी ने नहीं किया। यही कारण है कि आपकी कहानियों और उपन्यासों को पढ़ने से जादू का सा असर पड़ता है। बच्चे-बूढ़े, स्त्री-पुरुष—सभी आपकी रचनाओं को बड़े प्रेम से पढ़ते हैं। प्रस्तुत पुस्तक में प्रेमचन्द जी की उन सभी कहानियों का संग्रह किया गया है, जो 'चाँद' में पिछले तीन-चार वर्षों में प्रकाशित हुई हैं। इसमें कुछ नई कहानियाँ भी जोड़ दी गई हैं, जिनसे पुस्तक का महत्व और भी बढ़ गया है। प्रकाशित कहानियों का भी फिर से सम्पादन किया गया है। बढ़िया काग़ज़ पर छपी तथा समस्त कपड़े की सजिल्द पुस्तक का मूल्य २॥); स्थायी ग्राहकों के लिए १॥।=) मात्र! नवीन संस्करण छप रहा है!!

☞ व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

गल्प-विनोद

[लेखिका—श्रीमती शारदाकुमारी देवी, भूतपूर्व सम्पादिका—'महिला-दर्पण']

इस सुन्दर पुस्तक में देवी जी की समय-समय पर लिखी हुई कहानियों का अपूर्व संग्रह है। सभी कहानियाँ रोचक और शिक्षाप्रद हैं। इनमें सामाजिक कुरीतियों का अच्छा ख़ाका खींचा गया है। छोटी-छोटी कहानियों के प्रेमी पाठकों को इसे अवश्य पढ़ना चाहिए। पृष्ठ-संख्या १८०; मोटे ३९ पाउण्ड के काग़ज़ पर छपी हुई पुस्तक का मूल्य केवल १); स्थायी ग्राहकों के लिए ॥); पुस्तक दूसरी बार छप रही है।

मेहरुन्निसा

[अनुवादक—श्री० मङ्गलप्रसाद जी विश्वकर्मा, विशारद]

भारत-सम्राट् जहाँगीर की असीम क्षमताशालिनी सम्राज्ञी नूरजहाँ का नाम कौन नहीं जानता? भारतवर्ष के इतिहास में उसकी अक्षय कीर्त्ति-गाथा ज्वलन्त अक्षरों में आज भी देदीप्यमान् हो रही है। इसी सम्राज्ञी का पुराना नाम मेहरुन्निसा था। जहाँगीर उसके अपूर्व लावण्य पर मुग्ध हो गया और उसने येन-केन-प्रकारेण उसके पति शेरअफ़ग़ान को मरवा डाला। आत्माभिमानिनी वैधव्य-दुख-कातरा, प्रताड़िता, रूपसी मेहरुन्निसा का यह करुणरस-पूर्ण चरित्र एक बार दिल को दहला देता है। इसके पश्चात् यह उदात्त-चित्ता मेहरुन्निसा सम्राट् की प्रेयसी और श्रेयसी बनकर किस प्रकार नूरजहाँ के नाम से भारत की सम्राज्ञी बनी—ये सब घटनाएँ इस उपाख्यान में बड़े कवित्वपूर्ण शब्दों में वर्णित हैं। प्रत्येक रमणी को इस रमणी-रत्न का चरित्र पढ़कर अपूर्व लाभ उठाना चाहिए। मूल्य केवल ॥) आने; स्थायी ग्राहकों के लिए छः आने मात्र!

घरेलु चिकित्सा

[ले० अनेक सुविख्यात डॉक्टर, वैद्य और हकीम]

इस पुस्तक में 'चाँद' में प्रकाशित घरेलू दवाइयों का अपूर्व संग्रह है। पैसे-पैसे की दवाइयों से ही कठिन से कठिन रोगों का इलाज किया जा सकता है। स्त्री-पुरुष, बच्चे—सभी के लिए पुस्तक समान रूप से उपयोगी है। मूल्य केवल ॥।); स्थायी ग्राहकों के लिए ॥-) मात्र !

पहला २,००० कॉपियों का संस्करण केवल २० रोज़ में ही समाप्त हो गया था, पुस्तक की उत्तमता का इससे अच्छा और क्या प्रमाण दिया जा सकता है ?

भारत में अङ्गरेज़ी राज्य

[लेखक—श्रीयुत सुन्दरलाल जी भूतपूर्व सम्पादक—'कर्मयोगी' व 'भविष्य' ।

भारत के अन्दर अङ्गरेज़ों के आगमन, अङ्गरेज़ी सत्ता के विस्तार, अङ्गरेज़-विजेताओं के साधन और हमारी क़ौमी कमज़ोरियों का इतिहास।

इस पुस्तक में भारत की सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक अवस्था के साथ-साथ ईस्ट इण्डिया कम्पनी की कूटनीति, साज़िशों, रिशवत-सितानियों, गुप्त हत्याओं इत्यादि का विस्तृत वर्णन कम्पनी और अङ्गरेज़-गवरनरों के गुप्त पत्रों और पार्लिमेण्ट की रिपोर्टों के आधार पर किया गया है।

पुस्तक में लेखक की निजी खोज तथा अन्य प्रामाणिक ऐतिहासिक ग्रन्थों के आवश्यक उपयोग के अतिरिक्त प्रसिद्ध इतिहासज्ञ मेजर वामनदास बसु, आई० एम० एस० की २५ वर्ष की खोज और परिश्रम का परिणाम उनकी मुख्य-मुख्य ऐतिहासिक पुस्तकों का सम्पूर्ण सार सम्मिलित है।

विद्याविनोद-ग्रन्थमाला की विख्यात पुस्तकें

भारत में अङ्गरेज़ी राज्य पर इससे अच्छी और प्रामाणिक पुस्तक इतिहास के विद्यार्थी को दूसरी नहीं मिल सकती। पुस्तक हिन्दी-संसार में एक अपूर्व चीज़ है। प्रत्येक भारतवासी को इस पुस्तक का अध्ययन करना चाहिए। ८० रङ्गीन और सादे चित्रों, ऐतिहासिक दृश्यों और नक़्शे सहित, पृष्ठ-संख्या २,०००; दो भागों में, खद्दर की सुन्दर जिल्द, मूल्य १६) स्थायी ग्राहकों के लिए १२) रुपए।

*

स्मृति-कुञ्ज

[ले० 'एक निर्वासित ग्रेजुएट']

नायक और नायिका के पत्रों के रूप में यह एक दुःखान्त कहानी है। प्रणय-पथ में निराशा के मार्मिक प्रतिघातों से उत्पन्न मानव-हृदय में जो-जो कल्पनाएँ उठती हैं और उठ-उठकर चिन्ता-लोक के अस्फुट साम्राज्य में विलीन हो जाती हैं, वे इस पुस्तक में भली-भाँति व्यक्त की गई हैं। हृदय के अन्तःप्रदेश में प्रणय का उद्भव, उसका विकास और उसकी अविरल आराधना की अनन्त तथा अविच्छिन्न साधना में मनुष्य कहाँ तक अपने जीवन के सारे सुखों की आहुति कर सकता है, ये बातें इस पुस्तक में एक अत्यन्त रोचक और चित्ताकर्षक रूप में वर्णन की गई हैं! जीवन-संग्राम की जटिल समस्याओं में मानवी उत्कण्ठाएँ किस प्रकार विधि के कठोर विधान से एक अनन्त अन्धकार में अन्तर्हित हो जाती हैं एवं चित्त की सारी सञ्चित आशाएँ किस प्रकार निराशा के भयानक गह्वर में पतित हो जाती हैं—इनका जो हृदय-विदारक वर्णन इस पुस्तक में किया गया है, वह सर्वथा मौलिक एवं नवीन है। आशा, निराशा, सुख-दुख, साधन, उत्सर्ग एवं उच्चतम आराधना का सात्विक चित्र पुस्तक पढ़ते ही

वेदनापूर्ण एवं अमूल्य पत्रों का मराठी, बँगला तथा कई अन्य भारतीय भाषाओं में पहले अनुवाद हो चुका है; पर आज तक हिन्दी-संसार को इन पत्रों के पढ़ने का सुअवसर नहीं मिला था। इस अभाव की पूर्ति करने के लिए ही हम इसका हिन्दी-अनुवाद प्रकाशित कर रहे हैं।

इन पत्रों में कुछ पत्रों को छोड़, प्रायः सभी पत्र सामाजिक प्रथाओं एवं साधारण घरेलू चर्चाओं से परिपूर्ण हैं; पर उन साधारण चर्चाओं में भी जिस मार्मिक ढङ्ग से रमणी-हृदय का अनन्त प्रणय, उसकी विश्व-व्यापी महानता, उसका उज्ज्वल पतिभाव और प्रणय-पथ में उसकी अक्षय-साधना की पुनीत प्रतिमा चित्रित की गई है, उसे पढ़ते ही आँखें भर आती हैं और हृदय-वीणा के अत्यन्त कोमल तार एक अनियन्त्रित गति से बज उठते हैं। दुर्भाग्यवश, रमणी-हृदय की उठती हुई सन्दिग्ध भावनाओं के कारण कमला की आशा-ज्योति अपनी सारी प्रभा छिटकाने के पहले ही सन्देह एवं निराशा के अनन्त तम में विलीन हो गई। इसका परिणाम वही हुआ, जो होना चाहिए—कमला को उन्माद-रोग होगया। उसके अन्तिम पत्र प्रणय की स्मृति और उन्माद की विस्मृति की सम्मिलित अवस्थाओं में लिखे गए हैं। जो हो, उन पत्रों में जिन भावों की प्रतिपूर्ति की गई है, वे विशाल और महान् हैं। उन पत्रों के प्रत्येक शब्द से एक वेदना उठती है, और उस वेदना में मानव-जीवन का नीरव रोदन प्रतिध्वनित होता है; और उस प्रतिध्वनि में अनन्त का अव्यक्त सङ्गीत प्रतिपादित होने लगता है। यह एक अनुपम पुस्तक है। मूल्य केवल ३); स्थायी ग्राहकों के लिए २।) मात्र !

पाक-चन्द्रिका

[सम्पादिका—श्रीमती विद्यावती जी सहगल]

इस पुस्तक में प्रत्येक अन्न तथा मसालों के गुण और अवगुण वर्णन

करने के अतिरिक्त पाक-सम्बन्धी सभी वस्तुओं का सविस्तार और सरल भाषा में वर्णन किया गया है। प्रत्येक चीज़ के बनाने की विधि सविस्तार दी गई है। इस पुस्तक से थोड़ी भी हिन्दी जानने वाली कन्याएँ भरपूर लाभ उठा सकती हैं। मन-चाहा पदार्थ पुस्तक सामने रखकर आसानी से तैयार किया जा सकता है। दाल, चावल, रोटी, पुलाव, मीठे-नमकीन चावल; भाँति-भाँति के शाक, सब तरह की मिठाइयाँ, नमकीन, बङ्गला मिठाई, पकवान, सैकड़ों तरह की चटनी, रायते, अचार, मुरब्बे आदि बनाने की विधि बड़ी उत्तमता से इस पुस्तक में लिखी गई है। प्रत्येक महिला को यह पुस्तक अपने पास रखनी चाहिए। लगभग ८०० पृष्ठ की समस्त कपड़े की सुन्दर सुनहरी सजिल्द पुस्तक की क़ीमत केवल ४) रु०; स्थायी ग्राहकों के लिए ३) रु० मात्र! पहला संस्करण केवल दो मास में ही समाप्त हो गया था। नया संस्करण अभी-अभी प्रकाशित हुआ है। पुस्तक के अन्त में गृह-विज्ञान-सम्बन्धी सैकड़ों अनमोल चुटकुले भी दिए गए हैं। पुस्तक का नवीन संस्करण प्रेस में है।

समाज की चिनगारियाँ

[लेखक—श्री० ज़हूरबख़्श जी]

एक अनन्त अतीत-काल से समाज के मूल में अन्ध-परम्पराएँ, अन्ध-विश्वास, अविश्रान्त अत्याचार और कुप्रथाएँ, भीषण अग्नि-ज्वालाएँ प्रज्वलित कर रही हैं और उनमें यह अभागा देश अपनी सदभिलाषाओं, अपनी सत्कामनाओं, अपनी शक्तियों, अपने धर्म और अपनी सभ्यता की आहुतियाँ दे रहा है। 'समाज की चिनगारियाँ' आपके समक्ष उसी दुर्दान्त दृश्य का एक धुँधला चित्र उपस्थित करने का प्रयास करती हैं। परन्तु यह धुँधला चित्र भी ऐसा दुखदायी है कि इसे देखकर आपके नेत्र आठ-आठ

आँसू बहाए बिना न रहेंगे। 'समाज की चिनगारियाँ' आपको समाज के उस दारुण उत्पीड़न की मर्मस्पर्शी कथा सुनाने का उपक्रम करती हैं, जिसे सुनकर कभी आपका हृदय करुणा से उच्छ्वसित हो उठेगा, तो कभी मौन-हाहाकार कर उठेगा; कभी ग्लानि से गलित हो उठेगा, तो कभी जोश से फड़फड़ा उठेगा और कभी क्रोध की ज्वाला से भभक उठेगा तथा अन्त में आप आत्म-विस्मृत हो जायँगे। अधिक क्या कहें, आप स्वयं एक बार इस भीषण चित्र को देखिए—इस रक्ताक्त कथा को सुनिए, जिसकी एक-एक रेखा में, जिसके एक-एक शब्द में, वह्नि-ज्वाला धू-धू कर रही है।

पुस्तक बिलकुल मौलिक है और उसका एक-एक शब्द सत्य को साक्षी करके लिखा गया है। भाषा इसकी ऐसी सरल, बामुहाविरा, सुललित, तथा करुणा की रागिनी से परिपूर्ण है कि पढ़ते ही बनती है। कहने की आवश्यकता नहीं कि पुस्तक के लेखक (अध्यापक ज़हूरबख़्श जी) सुन्दर हिन्दी लिखने के लिए हिन्दी-संसार में सुविख्यात हैं। पुस्तक की छपाई-सफ़ाई, नेत्र-रञ्जक एवं समस्त कपड़े की जिल्द दर्शनीय हुई है; और सजीव प्रोटेक्टिङ्ग-कवर ने तो उसकी सुन्दरता में चार चाँद लगा दिए हैं। फिर भी मूल्य केवल प्रचार-दृष्टि से लागत मात्र ३) रक्खा गया है। 'चाँद' तथा स्थायी ग्राहकों से २।) रु०!

पुस्तक की माँग अधिकता से है। आप भी एक प्रति शीघ्र मँगा लीजिए, नहीं तो द्वितीय संस्करण की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।

आदर्श चित्रावली

'चाँद' में जो रङ्गीन तथा तिरङ्गे चित्र अब तक प्रकाशित हुए हैं, हिन्दी-संसार में उनकी धूम है। हज़ारों पाठक-पाठिकाओं के अनुरोध से हमने इन चित्रों का संग्रह प्रकाशित किया है। इस चित्रावली के प्रथम भाग में १६ चित्र हैं, ६ सादे और १० तिरङ्गे। चित्रों के साथ ही एक-से

विद्याविनोद-ग्रन्थमाला की विख्यात पुस्तकें

एक सुन्दर कविताएँ भी चार-चार रङ्गों में छपी हैं; देखने लायक चीज़ है। छपाई-सफ़ाई और जिल्द-बँधाई आदर्श हुई है। शादी-विवाह के अवसर पर वधू-बेटियों को उपहार देने योग्य है। मूल्य केवल ४) रु० ('चाँद' तथा ग्रन्थ-माला के स्थायी ग्राहकों को यह चित्रावली पुस्तकों की भाँति पौने मूल्य में नहीं मिलेगी, इस बात का ध्यान रखना चाहिए) डाक-व्यय अलग। दो प्रतियाँ एक साथ मँगाने वालों को केवल एक आना फ़ी रुपया कमीशन दिया जायगा। शीघ्र ही मँगा लीजिए, नहीं तो पछताना होगा।

मूर्खराज

[ले० श्री० [illegible] जी वर्मा, भूतपूर्व सम्पादक 'धर्माभ्युदय']

दुनिया की झंझटों से जब कभी आपका जी ऊब जाय, आप इस पुस्तक को उठाकर पढ़िए; मुँह की मुर्दनी दूर हो जायगी। हास्य की अनोखी छटा छा जायगी। पुस्तक को पूरी किए बिना आप कभी न छोड़ेंगे—यह हमारा दावा है। पुस्तक की छपाई और काग़ज़ के बारे में प्रशंसा करना व्यर्थ है। मूल्य सिर्फ़ १॥)

वीर बाला

[वीर-रस पूर्ण फड़कता हुआ ऐतिहासिक उपन्यास]

इस उपन्यास के मूल लेखक बँगला के प्रसिद्ध उपन्यासकार श्री० चण्डीचरण जी सेन हैं, जिनके नन्दकुमार की फाँसी, गङ्गा गोविन्दसिंह आदि

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

कई उपन्यासों के हिन्दी-अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं। इस अमर लेखक की लेखनी में कितनी ओज-शक्ति है, उसकी भाषा कितनी ओज-पूर्ण एवं संजीव होती है, यह बात उपन्यास-पाठकों से छिपी नहीं है। प्रस्तुत उपन्यास इन लेखक की सर्व-श्रेष्ठ कृति है। इसमें सन् ५७ के ग़दर में अंगरेज़ों के दाँत खट्टा करने वाली, वीर-बाला झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के वीरतापूर्ण ज्वलन्त आत्म-त्याग की कहानी उपन्यास के रूप में लिखी गई है। यों तो यह ऐतिहासिक उपन्यास है, फिर भी लेखक ने तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक एवं राजनैतिक विषयों पर भी पूर्ण प्रकाश डाला है। इस बीसवीं सदी के कुछ लोगों को प्रायः यह भ्रम हो चला है कि स्त्रियाँ केवल घर के काम-काज करने तथा मर्दों की काम-वासना पूरी करने की साधन-मात्र हैं और युद्ध आदि कठोर कर्मों के उपयुक्त नहीं, किन्तु इस उपन्यास के पढ़ने से पाठक-पाठिकाएँ भली-भाँति जान सकेंगी कि उपयुक्त शिक्षा-दीक्षा से स्त्रियाँ भी पुरुषों के समान रणक्षेत्र में जाकर शत्रुओं के दाँत खट्टे कर सकती हैं। कोई भी भारत-सन्तान ऐसी न होगी, जो इस प्रातः-स्मरणीय महिला की भारत की स्वतन्त्रता के लिए प्राण न्योछावर करने की कहानी को पढ़कर गर्व से फूल न उठे।

इस उपन्यास में यह भी दिखाया गया है, कि विदेशी शासन ने भारतवासियों की मनोवृत्ति को इतना कुचल डाला है कि उनके चित्त में स्वतन्त्रता, स्वदेशाभिमान, आत्म-गौरव आदि सद्वृत्तियों का पैदा होना सम्भव ही नहीं है। इसमें कहीं-कहीं पर वीर-रस का ऐसा वर्णन है, जिसके पढ़ने से कायर से भी कायर मनुष्य का हृदय एक बार फड़क उठेगा। साथ ही स्थान-स्थान पर अङ्गरेज़ों की क्रूरता और कुटिलता का वर्णन किया गया है, जिन्हें पढ़कर जी मसोस कर रह जाना पड़ता है। कहीं-कहीं पर करुण-रस की ऐसी करुण-धारा बही है कि जिन्हें पढ़कर आँखों से आँसुओं की बूँदें टपक पड़ती हैं। यों तो आजकल हिन्दी में अच्छे से अच्छे उपन्यास निकल रहे हैं, परन्तु हम दावे के साथ कहते हैं

कि ऐसा उत्तम साथ ही शिक्षाप्रद एवं उपयोगी उपन्यास हिन्दी में निकला होगा। तिरङ्गे एवं सादे चित्रों से विभूषित करने की भी जा रही है। सचित्र पुस्तक का मूल्य लगभग ४) रु० होगा और पृष्ठ होगी लगभग ४००, छपाई-सफ़ाई दर्शनीय। ऊपर सुन्दर Protecti Cover भी होगा। अभी से ऑर्डर रजिस्टर करा लीजिए। प्रकाशित के पूर्व ही सारी प्रतियाँ बिक जायँगी, ऐसी आशा है।

विदूषक

[लेखक—श्री० कैलाशचन्द्र जी भटनागर, एम० ए०]

नाम ही से पुस्तक का विषय इतना स्पष्ट है कि इसकी चर्चा करना व्यर्थ है। एक-एक चुटकुले पढ़िए और हँस-हँसकर दोहरे हो जाइए, इस बात की गारण्टी है। एक विशेषता इस पुस्तक में यह है कि सारे चुटकुले विनोदपूर्ण और चुने हुए हैं। कोई भी चुटकुला पढ़कर अगर दाँत बाहर न निकल पड़ें तो मूल्य वापस। बच्चे-जवान, बड़े-बूढ़े—सभी समान आनन्द उठा सकते हैं, यह इस पुस्तक की एक विशेष विशेषता है। पृष्ठ-संख्या लगभग १२५; काग़ज़ ४० पाउण्ड एण्टिक, छपाई-सफ़ाई दर्शनीय पुस्तक सजिल्द है, ऊपर सुन्दर Protecting Cover चढ़ा है; फिर भी मूल्य क्या? केवल १) रु०; स्थायी तथा 'चाँद' के ग्राहकों से ॥) मात्र!